वैदिक धर्म

[फरवरी १९५२]

संपादक

पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

सहसंपादक

श्री महेशचन्द्र शास्त्री, विद्याभास्कर

विषयानुक्रमणिका

वार्षिक मूल्य म. आ. से ५) रु.

वी. पी. से ५॥) रु. विदेशके लिये ६॥) रु.

वर्ष ३३ वैदिक धर्म अंक २

क्रमांक ३८

▲ माघ, विक्रम संवत् २००८, फरवरी १९५२ ▲

बलवान् बनो

प्रेता जयता नर उग्रा वः सन्तु बाहवः।
तीक्ष्णेषवोऽबलधन्वनो हतोग्रायुधा अबलानुग्रबाहवः ॥ ७॥

अथर्व ३।१९

(प्र इत्) शत्रुपर आक्रमण करो। (जयत) विजय प्राप्त करो। हे (नरः) वीर! (वः बाहवः) तुम्हारे बाहू शौर्ययुक्त हो। तुम (तीक्ष्णेषवः) तीक्ष्ण बाणोंका उपयोग करो। (उग्र आयुधाः) अपने शस्त्र प्रभावशाली बनाओ। (उग्र बाहवः) अपना बाहुबल बढाकर (अ-बल-धन्वनः अबलान्) निर्बल धनुष्य धारण किये हुए अशक्य शत्रुओंको तुम (हत) मार डालो।

अपनी शक्तिको बढाकर, अपने शस्त्रास्त्र शत्रुके शस्त्रोंकी अपेक्षा अधिक प्रभावी बनाओ। तुम्हारा बाहुबल शत्रुओंकी अपेक्षा अधिक प्रभावशाली होना चाहिये। कभी भी, किसी परिस्थितियोंमें भी शत्रुकी अपेक्षा तुम्हारी युद्ध तैयारी कम होनी नहीं चाहिये। तुम्हारी तैयारी उत्तम है, तुम्हारे शस्त्र अधिक प्रभावी है। यह सब देखकर शत्रुपर आक्रमण करना और शत्रुको पराजित कर विजय प्राप्ति करनी चाहिये।

संस्कृत-परीक्षा-केन्द्र-वृत्त

धारमें प्रमाणपत्र वितरणोत्सव

दिनाङ्क २६-११-५१ को राजकीय संस्कृत पाठशाला धारमें श्री आयुर्वेदाचार्य पं० गोपाल रावजी श्रोत्रीय- अध्यक्ष 'धार जिला आयुर्वेदिक मण्डल' के करकमलोंद्वारा प्रमाणपत्र वितरण समारम्भ मनाया गया। श्री वैद्यजीने छात्रोंको संस्कृत-पठन प्रवृत्तिपर उपदेशात्मक भाषण दिया। प्रधानाध्यापक, साहित्यभूषण पं० सुधाकरशास्त्री साहित्य, ज्योतिष पुराणतीर्थने आभार प्रदर्शित करते हुए पाठशालीय पं० नारायणजी ज्योतिषि एवं मोतीलालजीशास्त्रीको उक्त परीक्षाओंके लिये छात्रोंको प्रेरित कर प्रविष्ट करानेके लिये धन्यवाद दिया। पश्चात् आमन्त्रित महानुभावोंका आतिथ्य सत्कार कर उत्सवकार्य समाप्त हुआ।

चान्दूर रेल्वे

श्रीयुत **कु० गु० देशपाण्डे** सूचित करते हैं कि स्थानीय सरकारी हाईस्कूलका पाचवा स्नेहसम्मेलन ता० १६-१७-१८ दिसम्बरको यहांके सुप्रसिद्ध दानशूर नागरिक श्री **मन्नालालजी गुप्तकी** अध्यक्षतामें अति उत्साहसे सम्पन्न हुआ। सर्वप्रथम मुख्याध्यापक श्री **नाफडे**जीने संस्कृत भाषाके महत्वके विषयमें अत्यन्त उद्बोधक व्याख्यान दिया। उसके पश्चात् अध्यक्ष महोदय-के करकमलोंद्वारा उत्तीर्ण छात्रोंको प्रमाणपत्र दिये गये। अध्यक्ष महोदयने संस्कृतभाषाके प्रचारकी आवश्यकता बतलाते हुए इस बातपर विशेष जोर दिया कि प्रत्येक बालकको संस्कृतका अच्छा अभ्यास करना ही चाहिये। इसके पश्चात् अन्य कार्यक्रम हुए और बडी सफलतापूर्वक यह समारम्भ समाप्त हुआ।

काश्मीरमें प्रचारवृद्धि

श्रीनगर केन्द्रके व्यवस्थापक श्री **जानकीनाथजी सि०** शास्त्रीने सूचित किया है कि यहाँ संस्कृतके प्रति प्रतिदिन रुचि बढती जारही है। हमें प्रचारके लिये बहुत कम अवसर मिले हैं तथापि आशातीत सफलता हमें प्राप्त हो रही है। हमें आशा है कि आगामी परीक्षाओंके लिये इधरसे सैकडो परीक्षार्थी तैयार हो सकेंगे।

पटियालाकी प्रगति

पटियालाके केन्द्रव्यवस्थापक श्री **विद्यारत्नजी** विद्यालङ्कारने सूचित किया है कि यहांकी आर्य पाठशालाओं एवं कन्या पाठशालाओंके अतिरिक्त अन्य शिक्षणालयोंमें भी संस्कृतभाषाके प्रति छात्रोंमें रुचि बढती जा रही है। यहांके सामाजिक कार्यकर्ता-ओंका भी इस शुभकार्यमें खूब सहयोग प्राप्त हो रहा है। मेरा विश्वास है कि आगामी परीक्षाओंके लिये पटियाला केन्द्रसे कमसे-कम १०१ परीक्षार्थी अवश्य सम्मिलित होंगे।

अजमेरमें प्रचारकार्य

अजमेरके केन्द्राध्यक्ष श्री रामचन्द्रजी आर्य मुसाफिर सूचित करते हैं कि अजमेरके आसपासके देहातोंमें संस्कृतभाषाके प्रचारार्थ श्री **जवाहरलालजी** बडी सफलता और लगनसे कार्य कर रहे हैं। उन्हें आशा है कि आगामी परीक्षाओंके लिये आस-पासके केन्द्रोंसे भी परीक्षार्थी बहुत अधिक संख्यामें सम्मिलित होंगे।

संस्कृतकी लोकोक्तियाँ

सम्पादक- महेशचन्द्रशास्त्री, विद्याभास्कर, साहित्यरत्न

२६१- उपानद् गूढपादस्य ननु चर्मावृतेव भूः (सावनके अन्धेको हरा ही हरा सूझता है)

२६२- उदकान्तं स्निग्धोऽनुगन्तव्य (स्नेहीजनको उदकान्तपर्यन्त छोड़ने जाना चाहिये-विदाके समय)

२६३- उपार्जितानां वित्तानां त्याग एव हि रक्षणम् (कमाये धनका त्याग करना ही उसकी रक्षा है)

२६४- उपोषितस्य व्याघ्रस्य पारणं पशुमारणम् (उपोषित व्याघ्रकी पारणा पशुको मारकर होती है)

२६५- उभयत पाशा रज्जु (इधर कुँआ उधर खाई)

२६६- ऋणकर्ता पिता शत्रुः (ऋण करनेवाला पिता शत्रु है)

२६७- एकां लज्जां परित्यज्य सर्वत्र विजयी भवेत् (बेशर्मी तेरा ही सहारा है)

२६८- एष यमसदनं प्रविश्य प्रतिनिवृत्तः (यह तो मौतके मुँहसे ही लौटा है)

२६९- कष्टादपि कष्टतर परगृहवास परान्नभोजनं च (पराये घर रहना और पराया अन्न खाना सबसे बड़ा कष्ट है)

२७०- कथमत्र मक्षिकारणे कुञ्जरसंचारः (दाल-भातमें मूसरचन्द)

२७१- काको हि जीवति चिराय बलिं च भुङ्क्ते (बलि खाता हुआ तो कौवा भी बहुत दिनोंतक जीवित रहता है)

२७२- कायः कस्य न वल्लभः (शरीर किसको प्यारा नहीं है ?)

२७३- काचमूल्येन विक्रीतो हन्त चिन्तामणिर्मया (दुःख है कि मैंने कांचके मोल चिन्तामणि बेच दी)

२७४- काचः काञ्चन संसर्गाद्धत्ते मारकतीर्द्युतीः स्वर्णके संसर्गसे कांच भी मरकतमणिकी चमक धारण कर लेता है)

२७५- काश्मीरजस्य कटुतापि नितान्त रम्या (काश्मीरियाका कड़ुआपन भी बहुत मोहक होता है)

२७६- किं दूरं व्यवसायिनाम् (परिश्रमीके लिये कुछ भी असाध्य नहीं है ।

२७७- किं गते सलिले सेतुबन्धेन (पानीमें पड़ जाने पर पुल बांधनेसे क्या लाभ ?)

२७८- किं मर्दितोऽपि कस्तूर्या लशुनो याति सौरभम् (लहसुन कस्तूरीमे मलनेपर भी क्या सुगन्धित हो जाता है ?)

२७९- किंचित्कालोपभोग्यानि यौवनानि धनानि च (यौवन और धन अल्पसमयतक ही भोगने योग्य रहते हैं)

२८०- किमिष्टमन्नं खलु सूकराणाम् (सुअरको अन्न नहीं रुचता)

२८१- कीटोऽपि सुमनः सङ्गादारोहति सतां शिरः (कीड़ा भी फूलोंके साथसे सज्जनोंके मस्तकपर चढ़ जाता है)

२८२- कीदृशस्तृणानामग्निना सह विरोधः (तीन-कोंका अग्नि साथ विरोध कैसा ?)

२८३- कुकृत्ये को न पण्डितः (कुकृत्य करनेमें कौन चतुर नहीं होता)

२८४- कुठारै दण्डनिर्मुक्तैः भिद्यन्ते तरवः कथम् (बिना डण्डके कुल्हाड़ोंसे वृक्ष कैसे काटे जा सकते हैं ?)

२८५- कुगृहिणीं प्राप्य गृहे कुत सुखम् ? (अयोग्य गृहिणी प्राप्त होनेपर घरमें सुख कहाँ ?)

२८६- कुर्वन्नपि व्यलीकानि यः प्रियः प्रिय एव सः (जो प्रिय है वह गलतियाँ करनेपर भी प्रिय ही रहता है)

२८७- कूपे पश्य पयोनिधावपि घटः गृह्णाति तुल्यं जलम् (घड़ा कुएँमेंसे और समुद्रमेंसे बराबर परिमाणसे ही जल लेता है)

२८८- कृपणस्य धनं याति वह्नितस्कर पार्थिवैः (कंजूसका धन आग, चोर और राजाओंद्वारा चला जाता है)

२८९- कृपणानुसारिधनम् (धन कंजूसके पास ही जाता है)

२९०- कृते कार्ये किं मुहूर्त प्रश्नेन (काम हो जानेपर मुहूर्त पूछनेसे क्या लाभ ?)

२९१- केवलोऽपि सुभगो नवाम्बुदः किं पुनस्त्रिदशचापलाञ्छित (नया बादल अकेला भी सुन्दर दीखता है, यदि इन्द्र धनुषके साथ हो तो क्या पूछना है)

२९२- केतकी गन्धमाघ्राय स्वयं गच्छन्ति षट्पदाः (केतकीकी गन्ध सूंघकर भौंरे स्वयं ही उधर दौड जाते है)

२९३- केन कदावलोकितो ज्योत्स्नारहितश्चन्द्रमा (बिना चादनीका चाद क्या किसीने कभी देखा है ?)

२९४- केन गण्यो गरीबः (गरीबका कौन गिनता है)

२९५- को न याति वशं लोके मुखे पिण्डेन पूरित. (लांचसे पेट भर देनेपर ससारमें कौन वशमें नहीं हो जाता)

२९६- को नामोष्णोदकेन नवमालिकां सिञ्चति (उगती लताको उष्णजलसे कौन सींचता है)

२९७- कोलाहले काककुलस्य जाते विराजते कोकिलकूजितं किम् ? (कौवोंका शोरगुल होनेपर कोयलकी कूज बंद हो जाती है)

२९८- को न दृप्याति वित्तेन ? (धन मिलनेपर किसे घमण्ड नहीं होता ? ।)

२९९- क्रोधो मूलमनर्थानाम् (क्रोध अनर्थोंकी जड है)

३००- क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयतायाः (सच्चा सौन्दर्य वही है जो क्षणक्षणमें नवीनसा लगे)

३०१- क्षीरनीर विभेदे तु हंसो हंसो बको बकः (दूधपानी अलग अलग करनेमें हंस हंस ही रहता है और बगुला बगुला ही)

३०२- क्षीणेऽप्युपचीयते पुनश्चन्द्रः (चन्द्रमा क्षीण होनेपर भी पुनः बढ जाता है)

३०३- खण्डिता एव शोभन्ते वीराधरपयोधराः (वीर, अधर और पयोधर खण्डित हुए हुए ही शोभते हैं)

३०४- खल्वाटो निर्धन क्वचित् (गंजा शायद ही निर्धन होता है)

३०५ गुणाः सर्वत्र पूज्यन्ते पितृवंशो निरर्थकः (गुणोंकी ही सर्वत्र पूजा होती है वहाँ कुलवर्णन व्यर्थ है)

३०६- गुणः खल्वनुरागस्य कारणं न बलात्कारः (प्रेमका कारण गुण है, वह बलात्कारसे नहीं मिलता)

३०७- गुणैर्विहीना बहु जल्पयन्ति (गुणरहित मनुष्य बहुत बकते रहते है)

३०८- गृहं हि गृहिणीहीनमरण्यसदृशं मतम् (गृहिणीके बिना घर जंगल है)

३०९- घनाम्बुनाराजपथे हि पिच्छिले क्वचित् बुधैरप्यपथेन गम्यते (घनी बारिशसे कीचडयुक्त हुए मुख्यमार्गको छोड बुद्धिमान भी अपथसे जाया करते हैं)

३१०- चकास्ति योग्येन हि योग्य सङ्गम (योग्यके साथ योग्यका सम्बन्ध ही भला लगता है)

भारतीय संस्कृतिका स्वरूप

[लेखांक १०]

(लेखक— श्री. पं श्रीपाद् दामोदर सातवलेकर)

सत्यवादी राजा हरिश्चन्द्र

हरिश्चन्द्रकी कथा— हरिश्चन्द्रकी कथा सर्वविदित है। आज हिन्दु ऐसा मानते हैं कि यह कथा जीवनके लिये महान् आदर्श रूप है। यदि इस हरिश्चन्द्रकी आलोचना की जाय तो हिन्दुओंको वह कदापि सहन न होगी, इतना अधिक प्रेम आज हिन्दुओंको इस हरिश्चन्द्रके प्रति है। संक्षेपसे उस हरिश्चन्द्रकी कथा इस प्रकार है—

' हरिश्चन्द्र नामक एक राजा था। उसे स्वप्नमें ऐसा भास हुआ कि मैने अपना राज्य विश्वामित्र ऋषिको दान दे दिया है। इसके बाद विश्वामित्र ऋषि हरिश्चन्द्रके पास आया और उसने कहा कि- मुझे दान किया हुआ राज्य मेरे अर्पण कर। इसपर हरिश्चन्द्रने वह उसके आधीन कर दिया तथा दानकी विधिका यथावत् पालन करनेके लिये एवं तदर्थ दक्षिणा देनेके लिये स्वयंको, पत्नीको तथा पुत्र-को बेचकर और स्वयंको डोमके घरपर खूब श्रमित करके अपने स्वप्नके दानकी पूर्णता की। '

सब लोग संक्षेपतः इसी रूपमें इस कथाको जानते हैं। सब अन्तःकरणपूर्वक इस कथाके प्रति आस्था रखते हैं। इस प्रकारका अन्धविश्वास एवं विचारशून्य प्रेम करनेमें हिन्दु जाति आज भी अत्यन्त प्रवीण दीखती है। किन्तु इस कथापर कुछ आक्षेप भी हो सकते हैं। जैसे—

स्वप्नके वचनोंका पालन करना चाहिये अथवा नहीं?

१- हरिश्चन्द्र एक राजा था और एक राजाके नाते उस-पर कुछ उत्तरदायित्व निःसंशय था ही। तत्कालीन स्मृतिशास्त्रोंके अनुसार अथवा आजके कानूनके मुताबिक स्वप्नके वचनोंका पालन करनेके लिये वचनदाता बंधा नहीं है। इसके विरुद्ध स्मृतिवचनोंका एतादृश उल्लेख अवश्य मिलता है कि स्वप्नके वचनोंका पालन करनेका उत्तरदायित्व किसीपर भी नहीं है। किसी देशका कानून यह नहीं कहता कि स्वप्नके वचनोंका पालन होना चाहिये। ऐसा होनेपर भी यह हरिश्चन्द्र राजा स्वप्नके वचनका पालन करनेके लिये अनेक आपत्तियाँ मोल लेता है और डोमके घर अपनेको दुखी करता है!! इस प्रकारका यह राजा क्या सचमुच राजा होने योग्य है? अथवा क्या साधारण नागरिक होने योग्य भी क्या इसे माना जा सकता है? यह एक विचारणीय प्रश्न है।

क्या राज्य दान देनेकी वस्तु है!

दूसरा प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि क्या राज्य चाहे जिसे, चाहे जिसके द्वारा एवं चाहे जब दान देनेकी वस्तु है? हमारे वेदशास्त्रोंके अनुसार अथवा नीतिशास्त्रके अनुसार राज्य भी दान देनेकी एक वस्तु है, क्या यह बात सिद्ध हो सकती है? राज्य तो एक विश्वस्त निधि है तथा उस विश्वस्त निधिकी रक्षा शास्त्राज्ञाके अनुसार करना राजा का प्रथम कर्तव्य है। यह न करके ये हमारे हरिश्चन्द्र राजा स्वप्नके वचनोंका पालन करनेके लिये उस विश्वस्त निधिका दान कर देते हैं तथा इस प्रकारका दान विश्वामित्र ऋषि जो कभी स्वयं राजा था तथा जिसने मोहके कारण क्षात्रवर्ण छोडकर ब्राह्मणवर्ण अच्छा है। यह समझकर उसे प्राप्त करनेके लिये व्यर्थ खटपट की तथा इस प्रयत्नमें जिसने वसिष्ठके १०० पुत्रोंका वध किया ऐसा यह विश्वामित्र स्वप्नमें दिये हुए राज्यको जागृतावस्थामें स्वीकारनेके लिये तैयार हुआ दिखाई पडता है! यह कितने आश्चर्यकी

बात है !! विश्वामित्र वैदिक ऋषि है तथा वह मन्त्रद्रष्टा भी है। इसके गायत्री मन्त्रका जप प्रतिदिन द्विजगण जपा ही करते हैं। ऐसा ऋषि यदि राज्यका दान स्वीकार करे तथा हरिश्चन्द्रको स्वप्नके वचन पालन करनेके लिये बाध्य करे तो क्या यह उचित होगा? क्या सचमुच इस ऋषिने ऐसा किया होगा? वैदिक ऋषियोंको राज्यका महत्त्व विदित न था अथवा इस कथाके रचयिताको विदित न था?

राजाका आधार प्रजा है

' विशि राजा प्रतिष्ठितः ' यजु । प्रजा ही राजाका आधार है। पिछले लेखमें हमने देखा है कि वैदिककालमें प्रजापति नामक राज्यशासन पद्धति थी तथा राजा प्रजा-द्वारा निर्वाचित किया जाता था। राजा स्वयम्भू नहीं रहता था। राजाका ज्येष्ठ पुत्र-रामकी तरह-राज्यपर अभिषिक्त करना हो तो भी उसके लिये प्रजाजनोंकी सम्मति आवश्यक रहती ही थी। ' राजकृतः ' (king Makers राजाका निर्माण करनेवाले) यह प्रजाजनोंका वैदिक नाम था। यह प्रजाका अधिकार था। ऐसी प्रजाका दान करनेका अधिकार भला किसे हो सकता है? इससे यह प्रतीत होता है कि यह कथा किसी भोले भाले भगतने लिख दी होगी।

हरिश्चन्द्रको चाहिये था कि वह उस प्रजाकी-जो राज्य-की विश्वस्त निधि है—कमसेकम सलाह तो भी ले लेता; किन्तु उसने ऐसा बिल्कुल नहीं किया और अगले दिन प्रात काल विश्वामित्रके आते ही उसके आधीन राज्य-सूत्रकर देता है एवं अपनी स्वयंकी विक्री करनेके लिये एक गुलामकी तरह डोमके घर जाकर कष्ट उठाता है। यह बात किस शास्त्रके अनुसार उचित सिद्ध होगी? ऐसे राजाको आदर्श राजा किस प्रकार कहा जा सकता है?

राज्य कोई कूडाकरकट नहीं है अथवा यह योंही दे देने, बेचने या नीलाम करनेकी भी वस्तु नहीं है। सत्य-वादित्वके स्वयंके अहंकारके लिये नारायण स्वरूप होनेके कारण सेवा करने योग्य राज्यको क्या इस प्रकार दे देना चाहिये? ऋषियोंने घोषणा की थी कि ' समुद्रतक फैली हुई समस्त पृथ्वीपर एक आर्य राजाकी स्थापना करेंगे तथा उसका राज्यशासन वैदिक अनुशासनके अनुसार जनताके लिये लाभदायी करेंगे ' इस घोषणाके साथ हरि-श्चन्द्रका यह आचरण क्या जरा भी मेल खाता है? राज्य-का दानकरके, स्वयं उसका परित्याग करके चले जाना क्या सत्कृत्य माना जा सकता है? वेदोंके अनुशासन एवं स्मृतियोंके सिद्धान्त इनमेंसे किसीकी भी दृष्टिसे हरिश्चन्द्र-का यह कृत्य समर्थनीय नहीं कहा जा सकता। जो वचन दिया ही न गया हो उसके पालनके लिये यह राज्यका त्याग करना चाहता है। क्या यह सत्यनिष्ठा है?

आज ही करके देख लिजिये

यदि किसी व्यवहारके भले बुरेके विषयमें निर्णय करना हो तो उसके लिये यही कल्पना कर लेनी चाहिये कि वैसी बात आज भी हुई है और फिर देख लेना चाहिये कि उसका परिणाम क्या होगा। उस परिणामसे यह निर्णय कर लेना चाहिये कि व्यवहार उत्तम है अथवा बुरा है। इसी दृष्टिकोणसे हम इस कृत्यको ओर देखते हैं।

हरिश्चन्द्र हिन्दुओंका आजका आदर्श राजा है। आजके हमारे माननीय प्रधान मन्त्री पं० नेहरू हैं। इन्हें स्वप्न आया कि ' मैंने यह सम्पूर्ण राज्य लियाकतअली खानको दे दिया है या और किसीको दे दिया है, इस अपने स्वप्न-के वचनका पालन करनेके लिये क्या सचमुच इन्हे राज्य किसीको दे देना चाहिये और स्वयं कहीं भाग जाना चाहिये?

हमारा पूर्ण विश्वास है कि पं० नेहरूको पहिले तो ऐसा अप्रयोजक सपना आयेगा ही नहीं और यदि आगया तो अपने इस स्वप्नके वचनका पालन करनेके लिये कितना महान् अनर्थ करना पड जायेगा? पाठक ही इसकी कल्पना करें। ऐसा होनेपर भी आज हिन्दुओंके लिये यह हरिश्चन्द्र आदर्श हो है !! यही कारण है कि हिन्दुओंको आज भिन्न भिन्न प्रकारके डोमोंके यहाँ बारबार गुलाम बनकर बिकने-की नौबत आती रहती है। हिन्दुजातिके इसी प्रकारके अनेक मिथ्या आदर्श आज हमारे सम्मुख उपस्थित हैं और उनका परिणाम यह जाति आज भी भुगत रही है। मिथ्या आदर्शोंको अपने सामने रखनेवाली जातिका उद्धार कैसे सम्भव है? तथा जबतक ऐसे आदर्श सामने रहेंगे तब तक उसका तारण भी कौन कर सकता है?

वैदिक कालका हरिश्चन्द्र

हमने अभी पुराणकाल-बुद्धोत्तरकाल-के भोले एवं राष्ट्रको जिन्हे कल्पना भी नहीं थी ऐसे लेखकों द्वारा कल्पित हरिश्चन्द्रको देखा। अब हम सीधे वैदिककालके हरिश्चन्द्रको देखेंगे। जिससे पाठक दोनों हरिश्चन्द्रोंकी तुलना कर सकेंगे। वैदिक हरिश्चन्द्रकी यह कथा ऐतरेय ब्राह्मणमें इस प्रकार आयी है— हरिश्चन्द्र नामका राजा इक्ष्वाकुवंशमें उत्पन्न हुआ था। उसके १०० स्त्रियाँ थीं। तब भी उसके पुत्र उत्पन्न नहीं हुआ। पुत्रोत्पत्तिके लिये उसने वरुणकी स्तुति की। वरुण प्रसन्न हुआ और उसने इस शर्तपर हरिश्चन्द्रको वर दिया कि 'पुत्र होनेपर वह मुझे अर्पण किया जाय'। हरिश्चन्द्रको पुत्र हुआ और उसका नाम रोहित रखा गया।

पुत्र होते ही वरुण आया और उसे मांगने लगा। तब हरिश्चन्द्रने कहा— हे वरुण देव ! यह लडका तो अभी अर्भक ही है। अभी तो इसका नाम भी नहीं रखा है। अभी इसके दांत भी नहीं आये हैं। इसके जरा दांत तो आजाने दीजिये।

नाम रखा गया और दांत भी आगये। तब वरुण आया और लडका मांगने लगा। उस समय हरिश्चन्द्रने कहा-हे वरुणदेव! यद्यपि इसके दांत आचुके हैं तथापि अभी इसका उपनयन नहीं हो सका है। द्विजत्वसंस्कारसे रहित लडका अपवित्र या व्रात्य माना जाता है। इस प्रकारका संस्कारहीन लडका मेरे जैसे राजाके द्वारा आप जैसे देवको अर्पण करना क्या अच्छा है? राम, राम !! ऐसा अधम कृत्य कमसेकम मैं तो कभी न करूंगा।

उपनयन होते ही वरुण फिर आया और मांग करने लगा। तब हरिश्चन्द्रने कहा— हे वरुण देव ! अभी अभी इसका उपनयन हुआ है। अब यह गुरुके गृह जायेगा, विद्वान् बनेगा और जब यह पूर्ण विद्वान् हो जायेगा तो फिर यह आपका ही हुआ समझिये। मैं देनेके लिये नकार तो नहीं करता ? वरप्रदान या मानताके समय मैंने जो कहा था वह मैं करूंगा ही। मैं तो अब इसके केवल तरुण होनेकी प्रतीक्षा कर रहा हूँ।

इसके बाद जब रोहित १८ वर्षका हुआ तो हरिश्चन्द्रने तुरत उसे अपने पास बुलाकर कहा कि, प्रिय रोहित ! अब तू बालिग हो चुका है और अब तू स्वतन्त्र भी है, अतः आजसे तू स्वतन्त्र होकर विचर। तुझे चाहिये कि कुछ समयतक अभी तू वनमें जाकर ही रह। वरुण देव आता रहा और आजतक मैं उसे कुछ न कुछ बहाना बताकर रास्ता दिखाता ही रहा। किन्तु अब तो किसी बहानेसे काम नहीं चलेगा। अतः तू ऐसे समय राजवाडेमें न रहकर वनमें ही कहीं रह।

इस प्रकार पुत्रको समझा बुझाकर जब हरिश्चन्द्रने उसे वनमें भेज दिया तो वह निश्चिन्त हो गया। इतनेमें वरुण आया और पुत्रको मांगने लगा। तब हरिश्चन्द्रने कहा, हे वरुणदेव ! करारके अनुसार पुत्र तुम्हें देना बिल्कुल निश्चित है; किन्तु आजकलके सुधारवादी लडके बिल्कुल उद्धत हो गये हैं। यह लडका तो आजकल घरमें भी नहीं रहता। नाराज होकर वनमें चला गया है। भोजनके लिये भी घरपर नहीं आता और मेरा तो बिल्कुल सुनता ही नहीं है। तब फिर जो मेरा सुनता ही नहीं है उसे मैं आपके सुपुर्द किस प्रकार करूं ?

हरिश्चन्द्रकी ऐसी बातें सुनकर वरुण क्रोधित हुआ और उसने हरिश्चन्द्रके पेटमें उदर रोग उत्पन्न किया। तब हरिश्चन्द्र रुग्ण होकर बिस्तरेपर पड गया। यह देख उसने रोहितको वनसे बुलवाया और बीती हुई सम्पूर्ण घटना कह सुनाई। हमने कहा कि अब तो वरुण को सन्तुष्ट करनेके लिये कुछ न कुछ उपाय करना ही चाहिये।

अतः अब तू वनमें जा और कुछ गायें देकर किसी ब्राह्मणका पुत्र खरीद ला। इस ब्राह्मण पुत्रको तेरे बदले मैं वरुणको दे दूंगा। इस योजनाके अनुसार रोहित शुनःशेप को खरीद लाया और इस ब्राह्मण पुत्रको हरिश्चन्द्रने वरुण देवको अर्पण कर दिया। उस समय हरिश्चन्द्रने वरुणसे कहा— हे वरुणदेव ! वास्तवमें आपको मुझे क्षत्रियपुत्र देना था; किन्तु क्षत्रियका शरीर जरा कठोरसा और हट्टा कट्टासा होता है। ब्राह्मणपुत्रका शरीर लचकदार और मुला-यम होता है तथा यों भी क्षत्रियकी अपेक्षा ब्राह्मण प्रत्येक दृष्टिसे श्रेष्ठ ही है। अतः कठोर क्षत्रियकी अपेक्षा गुदगुदे ब्राह्मण पुत्रका समर्पण मैंने आपको किया है। आपका समाधान अल्पमूल्यकी वस्तुसे सम्भव होनेपर भी मैं आपको

बहुमूल्यकी वस्तु समर्पण करना चाहता हूँ। अवश्यही आप इससे सन्तुष्ट होंगे। अत इस ब्राह्मणपुत्रको स्वीकार कीजिये, मेरे क्षत्रिय पुत्रका क्षोभ त्यागिये और मेरा उदर-रोग अच्छा होने दीजिये।

वरुण इस बातपर सहमत हो गये। आगे चलकर ब्राह्मण पुत्र भी देवोंकी मिन्नतें करके और उनकी कृपा प्राप्त करके वरुणके जालसे निकल गया।

यह वैदिक हरिश्चन्द्रकी कथा है। यही कथा आगे जाकर बुद्धोत्तर कालमें किस प्रकार विकृत होगई, इसका उदाहरण पाठक भलिभांति देख सकते हैं।

स्वसंरक्षणका सूत्र

इस वैदिककालमें 'स्वसंरक्षण' यह मुख्य सूत्र स्पष्ट रूपसे जनताके सामने रहता था। अपनी रक्षाका प्रथम उपदेश इसमें निहित है। यह हरिश्चन्द्र प्रत्यक्ष दिये हुए वचनोंका पालन भी नहीं करता तो क्या स्वप्नके वचनका पालन करनेकी इससे आशा की जा सकती है? अनेक विध उपायोंसे प्रथम स्वयंका रक्षण होना चाहिये। जीवित यदि रहे तो अपने धर्मका पालन करेंगे और लोकहित भी कर सकेंगे। किन्तु, यदि स्वयंका ही नाश हो गया तो धर्मका पालन कौन करेगा?

क्षत्रियोंकी रक्षा करनेके लिये ब्राह्मण भी तत्पर रहा करते थे। वह युग ऐसा ही था। जिन ब्राह्मणोंने आत्म-बलिदान करके क्षत्रियोंकी रक्षा की वे ही क्षत्रिय आज ब्राह्मणों पर हावी हैं। इतना अधिक परिवर्तन इस कालके अन्तरमें हुआ है।

आजके कोमल बने हुए हिन्दुओंको यह वैदिक युगका हरिश्चन्द्र अच्छा नहीं जंचेगा। उन्हें तो सर्वस्वदान करके डोमके यहाँ कष्ट पानेवाला हरिश्चन्द्रही पसन्द आयेगा। इसका एक मात्र कारण यही है कि उन्हें आज भी डोमके यहाँ गुलाम बनकर कष्ट सहन करने हैं। भविष्यमें क्या होगा इसे कौन जान सकता है?

पहले अपना संरक्षण करो

स्वराज्य प्राप्तिके पश्चात् हमें प्रथम अपना संरक्षण करना चाहिये। स्वप्नके वचनोंका पालन करके डोमके घर गुलामके रूपमें बिकना किसी भी युगमें उचित आचरण नहीं माना जावेगा। एवं जिस कालमें चारों ओर हमें समूल नष्ट कर देनेके लिये शत्रु टपे बैठे हों और हम उन्हें देख रहे हों, ऐसे भयङ्कर समयमें तो केवल सिद्धान्तों या आदर्शोंके नामपर स्वत्वकाही विनाश कर बैठना तो कदापि इष्ट न होगा।

सत्यका पालन करना चाहिये

सत्यका पालन एवं अहिंसाका आचरण करना अवश्यही बहुत बडा धर्म है। किन्तु यह सब कमसेकम जागृत अवस्थामें तो होना चाहिये और ऐसा करते समय दाताके मनपर किसी प्रकारका नशा न होना चाहिये। क्योंकि किसी वचनका पालन नशेमें नहीं किया जाता।

राष्ट्र एक विश्वस्त निधि है तथा राज्यशासन एक बहुत बडे दायित्वका कार्य है। वह राष्ट्र केवल एक व्यक्ति-की निष्ठाका पालन होनेके लिये विनष्ट करना कदापि उचित नहीं है।

राष्ट्र नारायणका संसेव्य रूप है

उसे स्वप्नके किसी आभाससे ही दूसरेको दे देना उचित नहीं है। उसकी तो आमरण सेवा करनी चाहिये, उसकी उन्नति करनी चाहिये। किन्तु किसी स्वप्न विशेषके कारण चाहे जैसा कर डालना कदापि उचित नहीं है।

आज स्वराज्य प्राप्तिके पश्चात् जो भी आदर्श हमें अपने सामने हमें रखने हैं वे खूब सोच समझकर एवं परीक्षणके पश्चात् ही रखने चाहिये।

स्वसंरक्षण होना चाहिये और इस मुख्य सूत्रको कदापि विस्मरित करना उचित नहीं है। वैदिक युगमें स्वसंरक्षण पर बल दिया जाता था; अतएव वे उत्तम प्रकार से जीवित रहा करते थे।

[लेखांक ११]

शरीर और राष्ट्र

पिछले दस लेखोंसे पाठकोंको यह विदित हो चुका होगा कि वेदकालीन आर्य धर्म वैयक्तिक स्वरूपका न होकर, एक प्रकारसे वह सामाजिक, सामुदायिक अथवा राष्ट्रीय स्वरूपका धर्म था। आजका हिंदु धर्म जैन एवं बौद्धोंके अतिरेकी व्यक्ति सत्तावादका होनेके कारण वैयक्तिक बन गया है। अतएव उसमेंसे सामुदायिक भाव का सम्पूर्णतः विनाश हो गया है।

पिछले तीन लेखोंमें तीन चार कथाओंके वैदिक स्वरूप का निदर्शन कराया गया है और उन्हीका पौराणिक संस्कारान्तर भी वहीं दिखाया है। उस सबसे तो यही बात सर्वथा स्पष्ट हुई है कि जो कथायें वैदिक कालमें राष्ट्रीय जीवनका बोध करनेवाली थीं, वे ही कथायें आगे चलकर केवल हीनतम वैयक्तिक स्वार्थी स्वरूपकी बन गई! यह इस प्रकारका रूपान्तर इस भारतवर्षमें हुआ है।

आज जिस प्रकार हम 'राष्ट्रीय' शब्दका प्रयोग बारबार करते हैं उस प्रकार उसका प्रयोग भलेही वैदिककालमें न होता हो तथापि उस समय जो कुछ भी किया जाता था वह राष्ट्रहितसाधक होता था एव राष्ट्रहितका सत्यानाश करके वैयक्तिक स्वार्थ साधनकी भावना भी मनमें नहीं आपाती थी।

वेदोंकी ओर जाओ

योगीराज श्री अरविन्द घोष पाण्डेचरीमें अपने आश्रममें तपस्या करते हुए कहा करते थे 'वेदोंकी ओर चलो' तथा जनताको वेदोंकी ओर ले जानेके लिये उन्होंने अनेक ग्रन्थोंका निर्माण भी किया। ७५वर्ष पूर्व महर्षि दयानन्द स्वरस्वतीने भी यही सन्देश दिया था। किन्तु इन दोनों महा-पुरुषोंके सन्देशकी ओर जनताका जितना ध्यान जाना चाहिये था उतना नहीं गया। इसका एकमात्र कारण यही है कि आजका हमारा जीवन सर्वथैव वैयक्तिक जीवन बन गया है एवं उसमें सामुदायिकता के भाव बिलकुल नहीं रहे हैं यही कारण है कि वैदिक आदर्श जनताके लिए पचने नहीं पाते!!

हिन्दु समाज को सामुदायिक दृष्टि से विचार करनेवाला बनानेकी आज इसीलिये आवश्यकता है। यदि इसका जीवन वैदिक बनाना हो तो उसे आज यह बात समझा देना अत्यावश्यक है कि हमारा सच्चा जीवन सामुदायिक जीवन ही है। यह कार्य जितनी शीघ्रतासे हो सके उतनाही अच्छा है।

राष्ट्रपुरुषकी उपासना

राष्ट्रको एक व्यक्ति मानने की कल्पना शुद्ध वैदिक कल्पना है। ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्र ये चारों वर्णोंके लोग मिलकर एक राष्ट्रीय शरीरके मुख-बाहू-जंघा और पैर हैं (ऋग्वेद १।१०।९०) अर्थात् राष्ट्र एक अभिन्न राष्ट्रपुरुषका एक ही शरीर है यह वैदिक कल्पना सामुदायिक जीवनका कितना सुन्दर बोध देनेवाली है, इसे यहाँ देखना चाहिये! प्रत्येक व्यक्ति पृथक् पृथक् न होकर वह राष्ट्र पुरुषकी एक अखण्ड देहमें कहीं न कहीं अपने शरीरके गुणकर्मों के अनुसार नियोजित कार्य करनेके लिये स्थित है। व्यक्ति स्वतन्त्र नहीं है। अतः उसे राष्ट्रशरीरकी आवश्यकतानुसार अपना जीवन बनाना इष्ट है।

कोई भी व्यक्ति पूर्णरूपसे स्वतन्त्र नहीं है, अपितु वह राष्ट्रीय जीवन यज्ञका एक अवयव है, यह कल्पना कितनी उदात्त है एवं कितने विशाल जीवनकी ओर ले जानेवाली है।

व्यक्तिमें भी राष्ट्र है

एक शरीरमें सम्पूर्ण राष्ट्रका दर्शन ऋषिगण किया करते थे। शरीरस्थ भिन्न भिन्न अवयवही उसके विभिन्न प्रान्त हैं। तत् तत् प्रान्तोंके अधिकारी तत् तत् प्रान्तोंपर अपना अपना कार्य किया करते हैं। आंख, कान, नाक, मुंह, ये अनेक प्रान्त इस शरीररूपी राष्ट्रमें हैं। इनपर अलग अलग अधिकारी नियुक्त हैं। इनमेंसे प्रत्येक प्रान्तमें कोट्यवधि अणुजीव हैं। ये उन प्रान्तोंके प्रजाजन हैं तथा इनका पालन एवं संवर्धन करना वहाँके अधिकारी का कर्तव्य है। इस प्रकार शरीरके ३३ भागोंकी कल्पना करके उन ३३ प्रान्तोंपर ३३ प्रान्ताधिकारी नियुक्त हैं। यही अवयव अथवा इन्द्रियां हैं। इस प्रकार यह ३३ कोटी सूक्ष्मजीवोंका राष्ट्र ही है तथा इसी राष्ट्रमें हमें स्वराज्यकी स्थापना करनी है।

यहांका राजा जीवात्मा है और उसकी सहधर्मिणी साम्राज्ञी बुद्धि है। मनका यहां का सेनापति है और इसीके आधीन सम्पूर्ण संरक्षक सेना है। इनमें कुछ अधिकारी ऐसे

हैं जो वेतन लेकर काम करते हैं तथा कुछ ऐसे हैं जो बिना वेतन के कार्य करते हैं। जिस प्रकार आंख, कान, हाथ, पेर ये सब वेतन लेकर काम किया करते हैं। इन्हें बीच बीच में विश्रान्ति की भी आवश्यकता है, ये थकते भी हैं, और तब विश्राम भी करते हैं। इस प्रकार ये विश्रामप्रिय है। काम कम करना पडे किन्तु वेतन एवं विश्राम पूरा मिले, ऐसी इनकी सदैव इच्छा रहा करती है।

स्वयंसेवकोंका कार्य

इस शरीररूपी राष्ट्रमें दूसर स्वयंसेवक भी हैं। वे बिना विश्राम लिए निरन्तर यहाँका कार्य करते रहते हैं। बिना वेतन ये कार्य करते रहते हैं। इन्हें वेतन भी नहीं मिलता और विश्राम भी नहीं मिलता। इन स्वयंसेवकोंके बलपर ही यह राष्ट्र स्थित है। ये स्वयंसेवक शरीरस्थ एकादश प्राण एवं उपप्राण हैं। सम्पूर्ण शरीरका जीवन इन्हींकी सेवापर अवलम्बित है। जन्मसे लेकर मृत्यु पर्यन्त ये प्राण नामक स्वयंसेवक निरन्तर अन्दर बाहर चक्कर लगाकर सम्पूर्ण व्यवस्था अत्यन्त दक्षतापूर्वक रखा करते हैं। ये स्वयं सेवक ही राष्ट्रके सच्चे आधार हैं।

शरीररूपी राष्ट्रका यह वैदिक वर्णन कितना मनोरंजक एवं बोधप्रद है, यह पाठक देख सकते हैं। शरीर ३३ कोटि अणुजीवोंका एक राष्ट्र है। जब शरीरका निर्माण होता है उस समय इस आकाशमें परमेश्वर का अंशभूत अमृत पुत्र और उसके साथ ३३ दिव्य शक्तियां एवं अंश डोलते रहते हैं तथा जहाँ जाकर उन्हें अपना निवास करना होता है वहाँ जाकर वे बस जाते हैं।

राजा और उसके अधिकारी

यहां वेदोंने दो उपमायें दी हैं। एक मधुकर राजाकी और दूसरी राजा एवं उसके अधिकारियोंकी। मधुमक्खियों का झुंड और उनका एक राजा या रानी, ऐसी एक उपमा है। इन मक्खियोंका राजा बीचमें रहता है और अन्य मक्खियां उस राजाके साथ जहां वह जाता है वहाँ जाया करती हैं। मधुमक्खियोंके ऐसे संघ आकाशमें उपर नीचे उडते हुए बहुतोंने देखे होंगे। संघकी उत्तम कल्पना इससे कोई भी सहजही कर सकता है। आक्रमण करनेवालों पर ये सांघिक आक्रमण किया करती हैं। संघजीवनका आदर्श हम यहाँ देख सकते है।

दूसरी उपमा राजा और अधिकारी की है। मुख्य जीव यहाँका राजा है। तथा अन्य अवयवोंके ऊपरी अधिकारी तत् तत् प्रान्तोंके अधिकारी हैं। राजा जिधर जायेगा उस ओर अधिकारियोंको जानाही पडेगा। नवीन शरीरमें निवास करते समय यह जीवरूपी राजा अपने साथ अधिकारी वर्ग को ले जाता है एवं उसे कहता है कि (एतान् ग्रामान् अधितिष्ठस्व) इन इन ग्रामोंपर तू अधिष्ठाता रूपसे रह, इन इन ग्रामोंकी व्यवस्था तू देख। इस प्रकार समस्त अधिकारियोंको उनके अनुरूप स्थान प्रदान करके एव वहाँ उनकी यथावत् नियुक्ति करके स्वयं अपने हृदयमन्दिरमें आकर यह राजा विराजित होता है।

शरीररूपी राज्यका यह इस प्रकार का वर्णन बिल्कुल राष्ट्रके वर्णन जैसा वैदिकसाहित्यमें है। इस प्रकार वे ऋषि प्रत्येक शरीरमें राष्ट्रके दर्शन किया करते थे। शरीर के प्रति उनका दृष्टिकोण राष्ट्र जैसा ही था। राष्ट्रीय जीवन इसमें पूर्णतः उतरे विना इस प्रकार की कल्पना सम्भवही नहीं है।

कोई भी शरीरको शरीरके रूपमें देखेगाही अथवा इसे जैन और बौद्धों जैसे—संसारसे त्रस्त हुए लोग-पूय-विष्ठा मूत्र का गड्ढा या पिंजरा अथवा जेलखाना भी समझ सकते हैं। किन्तु शरीरमें अनेक प्रकारके प्रान्तों की कल्पना करके उनपर अधिकारी, रक्षक सैनिक, स्वयंसेवक आदि राष्ट्ररक्षण की सम्पूर्ण व्यवस्था की कल्पना करना वैदिक ऋषियोंका ही काम है। इतनाही नहीं, अपितु इस नगर को—

किलेकी नगरी

अष्टचक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या।
(अथर्ववेद)

पुरमेकादशद्वारं अजस्य अवक्रचेतसः।
(कठोपनिषद्)

नौ या ग्यारह महाद्वारवाली किलेकी नगरी, जिसकी बुर्जोंपर शत्रुका विध्वंस करनेके लिए विनाशक यन्त्र अथवा चक्र लगा रखे हैं, ऐसा माना है। इस किलेमें सात पर्त हैं। प्रत्येक पर्तके मजबूत दरवाजे हैं। वहीं रक्षक एवं स्वयंसेवक हैं। इस प्रकार नगर की उत्तम रक्षा व्यवस्था करनेवाले ऋषि राष्ट्ररक्षणकी कितनी सुन्दर व्यवस्था करते होंगे, इसकी कल्पना पाठक कर सकते हैं। शरीर को

किलेकी उपमा देनेवालों को बाह्य किलेकी कल्पना अवश्य होगी ही। यदि ऐसा न हो तो यह रूपक उनके मस्तिष्कमें आही किस प्रकार सकता है। शरीरका आध्यात्मिक वर्णन दुर्ग नगरीके समान करनेवालोंको अवश्यही बाह्य किलेका सुन्दर ज्ञान होगा ही।

शरीरके रोचक वर्णन द्वारा राष्ट्रीय संरक्षणका निर्देश करनेवाले ऋषि राष्ट्ररक्षाके विषयमें निश्चिन्त होंगे, यह कैसे कहा जा सकता है? अबतक हमने शरीरका वर्णन देखा। अब हम विश्वका वर्णन देखेंगे-

विराट् पुरुष ही विश्वपुरुष है

ऋषियोंने शरीरमें राष्ट्रके दर्शन किये तथा राष्ट्रके वर्णन के सदृश शरीरका वर्णन किया तथा सुरक्षित किलेबंदीमें उस राष्ट्रकी राजधानी बसी हुई है, अतः राजधानी पर आक्रमण नहीं हो सकता ऐसी यह (अयोध्या देवानां पूः) देवनगरी है, ऐसा कहा है। मानवी शरीरमें नगरी अथवा राष्ट्रका अवलोकन करनेवाले ऋषि विश्वको भी एक पुरुषका शरीर मानते हैं! वही वर्णन अब देखिये।

विश्व,सूर्य,चन्द्र, तारे,भूमि, नवग्रह आदि अनन्त वस्तुओंसे परिपूर्ण दिखाई दे रहा है। यह एक है, ऐसी कल्पना भी कोई नहीं कर सकता। इस प्रकार इस अनन्त पदार्थों से परिपूर्ण विश्वको 'विराट् पुरुष' का आकार मानकर वह एक देह है, वह विभिन्न वस्तुओंका स्वरूप न होकर एक विश्वव्यापी जीवन है, ऐसा ही उन्होंने माना है!!!

इस विराट् पुरुष की आंखें सूर्य और चन्द्र हैं, मुख अग्नि है, प्राण वायु है, उदर अन्तरिक्ष है, कान दिशायें हैं, मन विद्युत् है, केश वृक्ष और वनस्पतियां हैं, पृथ्वी चरणस्थानीय है, नद और नदियाँ धमनियां हैं, सागर एवं महासागर रुधिररूप है इस प्रकार यह विश्व एक विराट् पुरुषका अखंड जीवन है। विश्वमें जहाँ भिन्न भिन्न वस्तुएं दिखाई देती हैं वहाँ ऋषिगण एकात्मताके दर्शन करते हैं तथा जिस मानवी शरीरमें सब लोग एकत्व का दर्शन करते हैं वहाँ उन्हें राष्ट्र और विश्व दिखाई देता है। यही ऋषियोंकी दिव्य दृष्टि है।

हमें भी इसी प्रकार शरीरमें राष्ट्र और विश्वके एक अभिन्न जीवन के दर्शन करने चाहिए। विश्वरूप परमात्माका रूप है, यह यदि देखना हो तो वह इसी प्रकार दिखाई दे सकता है।

*

शरीर एवं विश्वकी मध्यके राष्ट्रके साथ इस प्रकार एकात्मता बनी हुई है। यहाँ (न इह नाना अस्ति किंचन) विभिन्न वस्तुएं न होकर एकही तत्व सर्वत्र व्याप्त है। शरीरान्तर्गत सूक्ष्म शक्तिका संबंध विश्वव्यापी महाशक्तिसे अत्यन्त घनिष्ठता का है। इसे कोई भी हटा नहीं सकता। यदि हम एक शरीरको लें तब भी उसमें विश्वान्तर्गत सभी शक्तियोंके सूक्ष्म अंश हैं तथा इन शरीरान्तर्गत सूक्ष्म अंशोंका सम्बन्ध विश्वकी शक्तिके साथ भी तद्वत् ही अभेद्य है, ऐसा दिखाई देगा। अर्थात् शरीर-राष्ट्र-विश्व इन सबको मिलाकर एक जीवन बनता है। यह एक अखण्ड जीवन है, इस बातको जानना और अनुभव करना ही ज्ञान है। इस बातका ज्ञान बिना हुए मनुष्यके पास जो रहता है वह अज्ञान है। अज्ञानसे मनुष्यको बन्धन प्राप्त होता है तथा ज्ञानसे स्वातन्त्र्यकी प्राप्ति होती है। ऋषियोंके तत्वज्ञानका यह सिद्धान्त है और इस तत्वज्ञानपर ही उसका समस्त राज्यशासन एवं व्यक्तिके जीवनका अनुशासन चलता है।

द्वन्द्वमय जीवन

आज हमें संसारकी ओर भेद दृष्टिसे देखनेकी आदत पड गई है। प्रत्येक मनुष्य भिन्न प्रत्येक राष्ट्र भिन्न, ऐसा हमें अनुभव होता है! हमारा व्यवहार भी ऐसाही हो रहा है। जैसा ज्ञान वैसा व्यवहार तो होना ही ठहरा। मूलतः ज्ञान ही द्वन्द्वमय होनेके कारण द्वन्द्व, भेद, संघर्ष और युद्ध बढा करते हैं और यह स्वाभाविक है। किन्तु ऋषियोंका दृष्टिकोण इन विभिन्नतामें भी एकत्वके दर्शन करनेका था। यह दिव्यदृष्टि मनुष्यको प्राप्त होनी चाहिए। तभी वह इस विश्वको अखण्ड एवं एकरस देख सकता है और आजके जो व्यवहार द्वन्द्वकी भित्तिपर आश्रित होकर चल रहे हैं उन्हें निर्द्वन्द्व बना सकता है। यह दृष्टि कुछ और ही है।

राजा और प्रजा, मालिक और मजदूर, धनको और ऋणको शिक्षित और अशिक्षित व्यापारी और गिन्हाइक इन सबके बीचका व्यवहार आज द्वन्द्व भावसे चल रहा है। एक दूसरेको निगल जानेका प्रयत्न करता है। ये सब एक दूसरको खाने और धोखा देनेके लिये टूट बैठे हैं। राजा कहता है कि मैं प्रजाको खा जाऊंगा। मिलमालिक कहता है कि मैं मजदूरोंको ठग लूंगा। सभी ऐसा कहते हैं और आपसमें एक दूसरेको धोखा दे रहे हैं। इसलिये समस्त विश्वमें संघर्ष बढता जा रहा है, व्यक्तिमें समाजमें,

जातिमें देशमें, राष्ट्रमें चारों ओर युद्ध भडकता हुआ दिखाई दे रहा है। इसका एक मात्र कारण यही है कि आजकी जनतामें द्वन्द्व दृष्टि काम कर रही है।

निर्द्वन्द्व दृष्टि

ऋषि निर्द्वन्द्व दृष्टिसे देखा करते थे तथा इसीलिये राजा-प्रजा, मालिक-मजदूर, धनको-ऋणको, शिक्षित-अशिक्षित, व्यापारी-खरीददारमें एक ही जीवन है, ऐसा व्यवहार करते थे। एकही जीवनकी ये अवस्थायें हैं, ऐसा वे मानते थे। वे परस्पर भिन्न न होकर, सब मिलकर एक अखण्ड जीवन है। यह दृष्टि निर्द्वन्द्व की दिव्य दृष्टि थी। यदि राजा और प्रजा एकही अखंड एवं अभिन्न जीवनके दो पहलू हैं तो उनमें कभी विरोध होना सम्भवही नहीं है। अपितु उनमें सामंजस्य उत्पन्न होगा और बढेगा। ऋषियोंकी इस दिव्य दृष्टिसे विश्वके व्यवहारोंमें स्थित युद्धोंकी कम होना सम्भव है और पारस्परिक सहयोगकी अभिवृद्धि भी सम्भव है।

विश्वरूपका दर्शन करके भगवान् श्री कृष्णने अर्जुनमें इसी दिव्य दृष्टिको उत्पन्न किया था और अर्जुन को यह भलिभांति समझा दिया कि कौरव तथा पाण्डव एकही जीवनके दो भाग हैं। यह ज्ञान यदि कौरवोंके नेताओंको हो गया होता तो युद्ध टल सकता था। एकही पक्षको यह ज्ञान रहे और दूसरा पक्ष द्वन्द्वदृष्टिका रहे तो भी ऐसे दो पक्षोंमें युद्ध होगा ही। किन्तु इसमें ज्ञानी पक्षका क्या दोष ? अतएव विश्वमें इस द्वन्द्व दृष्टिकी उत्पत्ति होनी चाहिये।

अपने ही शरीरमें फोडा हो जाय और उसके अन्दर की मवादसे शरीर विकृत होने लगे तो हम अपना शरीर भी काट डालते हैं। ऐसा करते समय उस शरीरके भागसे हमें द्वेष नहीं रहता; अपितु सम्पूर्ण शरीरपर समानरूपसे प्रेम रहता है। ' विश्वका एक अभिन्न जीवन है ' ऋषियोंकी यह अभिन्न दृष्टि संसारके संघर्ष, कालाबाजार, लांच, असत्यव्यवहार ' आदि बातोंपर निःसंशय रूपसे रोक-लगा सकती है। इसलिए इस दृष्टिसे—इस एकात्मकतासे हमें अपने भारत का राज्य शासन चलाकर संसारके लिये एक उदाहरण उपस्थित करना चाहिये। भारत को यही कार्य करना है। इसी आदर्शके लिये यह देश इतनी आपत्तियोंमेंसे भी जीवित बचा है और आज स्वतन्त्र भी हुआ है। यह एकात्मदृष्टि प्रथम हमें अपने राष्ट्रमें उत्पन्न करनी चाहिये और हमारे राष्ट्रके शासकोंमें इस दृष्टिका उदय होना चाहिये। आज हम सबके लिये यही प्रथम कर्तव्य है।

अनुवादक- महेशचन्द्रशास्त्री विद्याभास्कर

प्रेम रस सुन्दर

तुम हो मधुर प्रेम रस सुन्दर
दिव्य ज्योतिमय परम सखा हो।
इष्ट सभी के श्रेष्ठ सभी से,
तुम में सब का हृदय लगा हो॥
अनुपम, नित्यानन्द, निरंजन,
सुखकंदन, तुम प्रेमनिधि हो।
धारक रचक हो जगती के;
पालक पोषक हो सुरभि हो॥
प्रेम पुष्प ले तव चरणों में,
भेंट करें तुमको निजपन की,
अर्पित हो सब जीवन अपना;
प्रीति बढे मन में प्रीतमकी॥

जीवन संबल

जीवन संबल तुम्हीं,
तुम्ही एक प्राणाधार,
तुम ही जीवनसार,
तुम्हीं एक हृदयाधार॥
देव संपद के तुम्हीं,
एक मात्र मूलाधार,
विश्वास प्रेम पवित्रता—
आनंद के अक्षय भंडार॥
आध्यात्मिक जीवन के-
एक तुम्हीं हो आधार,
तुम हो प्रभु परमसार
परमबंधु, सर्वाधार॥

कवि-श्री. लालचन्द्रजी

प्राचीन भारतकी लोकसभाएं

—श्रीकृष्णकुमार रावत—

पाश्चात्य विद्वानोंका मत है कि 'प्राचीन भारतमें धर्म तथा आध्यात्मका ही प्राधान्य रहा है। इन दोनों विषयोंमें अधिक समय व्यतीत करनेके कारण भारतवासी सांसारिक तथा व्यावहारिक बातोंकी उपेक्षा कर जाते थे, उन्हें पारलौकिक विषयोंसे मुक्तहोने तथा ऐहलौकिक विषयोंके मनन या चिंतन करनेका अवकाश न मिला, जिससे जीवनके विभिन्न क्षेत्रोंमें उन्नति न कर पाये।' भारतीयोंके बारेमें प्रकट किये गयें ऐसे विचार वास्तवमें असत्य तथा अज्ञानता-सूचक है। प्राचीन ग्रथोंके अनुशीलनसे अब यह बात मानी जाने लगी है कि भारतको जहां एक ओर अध्यात्मशास्त्र, दर्शन, ज्योतिष, गणित एवं चिकित्सा आदि विद्याओंका अच्छा ज्ञान था वहीं दूसरी ओर उसने राजनीतिशास्त्रमें भी पर्याप्त उन्नति कर ली थी। राजसत्ताको प्रजासत्ताका अनुगामी बनानेके लिए उस समय विभिन्न प्रबंध किये गये थे। प्राचीन शासनपद्धतिमें जो लोकसभाएं होती थीं उन्हींपर प्रस्तुत लेखमें प्रकाश डालनेकी चेष्टा की गयी है। ऐसे समय जब कि हम लोक तथा विधानसभाओंका निर्माण करने जा रहे हैं, यह लेख मनोरंजक सिद्ध होगा।

सभाओंकी आवश्यकता

भारतवासी एकसत्तात्मक शासनपद्धतिके दोषों से पूर्णतः विज्ञ थे। राजाकी सत्ता सीमित करने तथा उसपर प्रभाव डालनेके लिए मंत्रिपरिषद् और जनपद-संस्थाओंकी स्थापना की गयी। महाराज मनुने विना मंत्रिमंडलके राज्य करनेवाले राजाको अयोग्य तथा मूढ कहा है। प्राचीन भारतके प्रायः सभी नीतिकारोंने लिखा है कि जब छोटेछोटे कार्य भी अकेले सुचारु रूपसे संपादित नहीं किये जा सकते तब उलझनों तथा कठिनाइयोंसे भरे भारी राज्यचक्रको राजा विना किसीकी सहायताके कैसे चला सकता है? इस संबध में मनु तथा शुक्राचार्यके ये शब्द उल्लेखनीय हैं

अपि यत्सुकरं कर्म तदाप्येकेन दुष्करम्।
विशेषतोऽसहायेन किम्नु राज्यं महोदयम्
(मनु ७,५५)

यद्प्यल्पतरं कर्म तदाप्येकेन दुष्करम्।
पुरुषेणासहायेन किन्नु राज्यं महोदयम्॥
(२ शुक्राचार्य अ)

उन दिनों वही राजा सर्वश्रेष्ठ माना जाता जो सभाओंके पीछे चलता था। वास्तवमें सभाएं ही शासन करती थी, राजा तो उनका सभापतिमात्र था शुक्राचार्यने लिखा है।

विना प्रकृतिसन्मन्त्राद्राज्यनाशो भवेन्म

अर्थात् राजसभाकी सम्मतिपर चलनेवाले राजाका ही राज्य स्थिर रहता है, नहीं तो उसे राज्यसे हाथ धोना पडता है। महर्षि याज्ञवल्क्य उस राजाको राजाही नहीं मानते जो मंत्रियोंसे सलाह किये विना राज्य करता है। शुक्राचार्य तो ऐसे राजाको 'चोर' शब्दसे भी संबद्ध करनेसे नहीं चूके।

मंन्त्रियोंके अधिकार

मन्त्री राजाके परामर्शदाता मात्र न थे, उन्हें काफी अधिकार मिले थे। 'आपस्तम्ब' के अनुसार मन्त्रियोंके विरोध करनेपर राजा ब्राह्मणोंतकको दान न दे सकता था। महाराज अशोक कुछ द्रव्य बौद्धसम्प्रदायको दान करना चाहते थे, पर प्रधान अमात्य राधागुप्तकी स्वीकृति न मिलनेके कारण वे ऐसा न कर सके थे। रुद्रदमनको भी मन्त्रि परिषद्की बात माननी पडी तथा उसे सुदर्शन झीलकी मरम्मत स्वयंके खर्चसे करानी पडी थी। चीनी यात्री हुवेन सांगने भी इसी प्रकार की एक घटनाका उल्लेख किया है। वह लिखता है कि 'श्रावस्तीका राजा विक्रमादित्य अर्थ सचिवकी सम्मति न मिलनेपर गरीब ब्राह्मणोंको प्रतिदिन५ लाख सोने के सिक्के न बंटवा सका था।' इस तरह स्पष्ट है कि राजा मन्त्रिपरिषद्के विना राज्य न कर सकता था।

पारिभाषिक शब्द

भारतके प्राचीन ग्रंथोंमें शासनतंत्रके रूपमें 'कौंसिल' का उल्लेख मिलता है। ऋग्वेदमें दैवी समितिः' का तथा

शतपथ ब्राह्मण एवं अथर्ववेद, तैत्तिरीयमें 'सभा' और 'परिषद्' का वर्णन पढनेको मिलता है। डाक्टर जायसवाल के मतानुसार यह समिति जन साधारण या 'विश' की राष्ट्रिय सभा थी। जिमर, मैकडोनाल्ड और कीथ ने अपने ग्रंथोंमें लिखा है कि प्राचीन भारतमें समाज जनोंमें बंटा था तथा प्रत्येक वर्गके लोगोंको 'विश' कहते थे। अतएव विशका यह अर्थ निकलता है- सर्वसाधारणमेंसे एक।

विद्वानोंमें समिति तथा सभाके अर्थोंमें मतभेद है। 'जिमर' का कहना है कि समिति समस्त जनताकी होती थी तथा सभा गाँवके लोगोंकी। हिलीब्रांट, मैकडोनल्ड तथा कीथ सभा और समितिमें कोई अन्तर नहीं मानते। लुडविगने सभामें बडे आदमियों तथा ब्राह्मणोंको माना तथा समितिमें समग्र जनसमुदायकी कल्पना की है। वेदोंमें कहीं-कहीं सभाको 'नारिष्ठा' कहा है। अथर्ववेदमें एक जगह राष्ट्रव्यवस्थापिकाको 'यमिनि' कह कर सम्बुद्ध किया है। इसमें आये एक सूत्रके अनुसार समिति तथा सभाका विवेचन करते हुए लिखा है कि 'समिति प्रजाकी प्रतिनिधि थी तथा सभा राजसभा थी। किसी निर्णयके लिए सर्वप्रथम प्रजा प्रतिनिधिसभामें, पश्चात् राजसभामें विवेचन होता था। दोनोंके एकमत होनेपर ही निर्णय निश्चित समझा जाता था।'

यजुर्वेदके पढनेसे पता चलता है कि हमारे यहां प्राचीन कालमें तीन सभाएं थीं-भारती, सरस्वती तथा इडावसु। प्रथम सभा ज्ञानकी वृद्धि करती थी, द्वितीय शासक पुरुषोंके निमित्त दुष्टोंके दमनके उपायोंका विचार करती थी तथा तृतीय जनपदवासियोंकी व्यवस्था करती थी।

इसके अतिरिक्त वेदोंमें दो और सभाओंका वर्णन पढनेको मिलता है। एक उत्तरा तथा दूसरी दक्षिणा। उत्तरा को कहीं-कहीं 'कुह' नामक गुप्त सभाके नामसे भी सम्बुद्ध किया गया है। इसका दूसरा नाम 'राका' भी है। राजा १६ अमात्योंके साथ इसमें देशके कार्योंपर विचार करता था। 'दक्षिणा' नामक समितिमें प्रजामेंसे २० धुरन्धर नियुक्त किये जाते थे।

ब्राह्मण-कालमें समितिको 'रत्नी' कहते थे। वे रत्नी ये थे-महिषी पुरोहित,सेनानी, सूत, ग्रामीण, छत्र, संग्राहित भागदुघ, अक्षावाप तथा गोविकर्तन। वेदोंमें मंत्रियोंके लिए 'सचिव' शब्द प्रयोगमें लाया गया है। मंत्रिपरिषद्के लिए अशोकके शिलालेखोंमें 'परिसा' तथा शुक्रनीति और महाभारतमें 'गण' लिखा है। रामराज्यमें 'अमात्यमण्डल' तथा 'मन्त्रिमण्डल' दोनों सम्मिलितरूपसे 'मंत्रिपरिषद्' कहलाते थे। अमात्यमण्डलका प्रत्येक सदस्य अमात्य सचिव कहलाता था। शासनकार्यका संचालन प्रमुख अमात्यगणही करते थे। वे सम्भवत क्षत्रियवर्गके होते थे। मन्त्रिमंडलको 'गुरवः' भी कहा है यह एक प्रकारसे परामर्शदात्री समिति थी, जो अन्तर्वर्ती समयमें 'राजकर्तारः' का काम करती थी। इसके समस्त सदस्योंको ब्राह्मण होना अनिवार्य था।

अमात्यों तथा मंत्रियोंकी योग्यता

यह निश्चित है कि सभासद या मन्त्री देशके योग्य चुने सज्जन हुआ करते थे। वातव्याधिके मतानुसार नीतिशास्त्रमें दक्ष नवीन पुरुषोंको ही अमात्य नियुक्त करना चाहिए। पिशुनका कहना है कि जो व्यक्ति राजकार्योंमें सफल प्रबन्धक सिद्ध हो चुके हैं, उन्हें ही अमात्य बनाना चाहिए। इन्द्र ऐसे व्यक्तीको अमात्य पद सौंपनेके पक्षमें हैं जो कुलीन बुद्धिमान्, पवित्र हृदय, सूर एवं अपने स्वामीमें प्रेम रखने वाले हों। कौणपदन्तका कहना है कि जिस व्यक्तिके पूर्वज अमात्यपद्को सुशोभित कर चुके हों उन्हें ही यह पद प्रदान करना चाहिये। पराशरके मतानुसार जिनकी राजभक्ति संदेह से परे हो, वे ही अमात्य बनने योग्य हैं। कौटिल्यके मतानुसार अमात्य तथा मंत्री पृथक् पृथक् पद है। उसने अपने अर्थशास्त्रमें स्पष्ट लिखा है कि उक्त योग्यता रखनेवाले व्यक्ति अमात्य तो बन सकते हैं, परन्तु मन्त्री नहीं। मंत्रियोंकी नियुक्ति उन अमात्योंमेंसे होती थी, जो 'सर्वोपधा' अर्थात् सब प्रकारसे परीक्षा किये जानेपर योग्य प्रमाणित होते थे।

मनुके मतानुसार जो शास्त्र शूरवीर तथा युद्धविद्या में कुशल हों जिनका कुल पवित्र हो तथा जो परम्परासे सेवा करते आये हों उन्हें भी मन्त्री बनाना चाहिए। शुक्राचार्यने लिखा है कि प्रधान सचिव सर्वदर्शी हो। व्यासदेवने एक जगह मंत्रियोंके गुणोंका वर्णन करते हुए लिखा है:-

मन्त्रान्निश्चयतत्त्वज्ञः षाड्गुण्यगुणवेदिनः।
शक्तान् कुलोचितान् भक्तान् अनाक्षारितपूर्वकान्॥
नीतिज्ञान् व्यवहारज्ञानितिहासार्थकोविदान्।
इंगितज्ञानुपायज्ञान् शूरान् वीरान् कुलोद्गतान्॥

सर्वकार्येषु निपुणान्निष्वस्त्रविधिपारगान् ।
अक्षुद्रान् क्षमिणः प्राज्ञाननागतविधायिनः ॥
आपत्या प्रतिकारज्ञांस्तदात्वे दृढनिश्चयान् ।
द्विषन्मित्रायुदासीनभावज्ञान् शंसितव्रतान् ॥
स्वभागगुप्तानचलानचलानिव भारत ।
धर्मशीलांश्च कृपणांस्तथा सर्वोपधातिगान् ।
धिया सर्वान्सम्परीक्ष्यराजाकुर्वन्तिमंत्रिणः ।
योऽस्य राजधुरं वोढुं समर्थाः सद्गवा इव ।

याज्ञवल्क्यका कथन है कि मन्त्रिमण्डलके सदस्य ऐसे हों जो वेदोंके ज्ञाता हों साम्यवादी हों, धर्मको जानते हों और सबसे बढ़कर अपने और परायेमें एकसा व्यवहार करनेवाले हों।–

श्रुताध्ययनसम्पन्नाः धर्मज्ञाः सत्यवादिनः ।
राज्ञा सभासदः कार्या रिपौ मित्रे च ये समाः ।

कात्यायनके मतानुसार सभासद ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्योंमेंसे ऐसे व्यक्तियोंको बनाना चाहिये जो जो धर्मशास्त्र तथा अर्थशास्त्रके पारंगत हों एवं जो सदैव निर्भय, बुद्धिमान् तथा कुलीन हों:–

स तु सभ्यैः स्थिरैर्युक्तः प्राज्ञै र्मौलेर्द्विजोत्तमैः ।
धर्मशास्त्रार्थ कुशलैरर्थशास्त्रविशारदैः ॥

यही नहीं, विदेशी यात्रियोंने लिखा है कि प्राचीन भारतमें योग्यसे योग्य पुरुष ही राज्य चक्रको चलाते थे। यूनानी यात्री मेगस्थनीज तथा एरियनके अनुसार राजसभा के सभासद बड़े बुद्धिमान् तथा न्यायशील होते थे।

सभी वर्णोंका प्रतिनिधि

वर्णके साथ कोई पक्षपात नहीं था। सभामें सभी वर्णोंके प्रतिनिधि रखे जाते थे। महाभारतके रचयिता व्यास भगवान् ने लिखा है कि सभाके ४० सभासदोंमेंसे ४ स्नातक विद्वान् ब्राह्मण हों, १८ वीर क्षत्रिय हों, १ वृद्ध अनुभवी सूत हो, ३ शूद्र तथा २१ धनी वैश्य हों। देखिये:—

वक्ष्यामि च यथामात्यायादृशांश्च करिष्यसि ।
चतुरो ब्राह्मणान्वैद्यान् प्रगल्भांस्नातकान्शुचीन् ॥
क्षत्रियान् दश चाष्टौ च बलिनः शस्त्रपाणिनः ।
वैश्यान्वित्त न सम्पन्नान् एकविंशतिसंख्यकान् ॥
क्रीतश्च शूद्रान्विनीतांश्च शुचीत्कर्माणि पूर्वके ॥
अष्टाभिश्च गुणैर्युक्तं सूतं पौराणिकं तथा ।
पञ्चाशद्वर्ष वयसं प्रगल्भमनसूयकम् ॥

याज्ञवल्क्यके मतानुसार संयमी, धार्मिष्ठ क्षत्रिय और वैश्यको भी राजा प्रतिनिधि बना सकता है। कात्यस्मृतिमें भी लिखा है कि कुलीन तथा सदाचारी अनुभवी वैश्योंको सभामें अवश्य रखना चाहिये।

कुलशीलवयोवृत्तवित्तवद्भिमत्सरैः ।
वणिग्भिः स्यात्कतिपयैः कुलभूतैराधिष्ठितम् ॥

अग्निपुराणमें राज्याभिषेक का जो वर्णन है। उससे भी इस बातकी पुष्टि होती है। कि सभी वर्णोंसे चुने योग्य पुरुष सभामें बैठते थे। उसकी ये पंक्तियां देखिये—

अभिषिञ्चेदमात्यानां चतुष्टयमथो घटैः ।
पूर्वतो हेमकुंभेन घृतपूर्णेन ब्राह्मणः ॥
रुथकुम्भेन याम्ये च क्षीरपूर्णेन क्षत्रियः ।
दध्ना च ताम्रकुम्भेन वैश्यः पश्चिमगेन च ।
मृण्मयेन जलेनोदक शूद्रामात्योऽभिषेचयेत् ॥

अर्थात् ब्राह्मण मन्त्री घीसे भरे सोने के घटसे तथा क्षत्रीय मंत्री चांदीसे बने घड़ेमें दूध भरकर राजाका अभिषेक करे। जो वैश्य मन्त्री हो वह दहीसे युक्त तांबेके घड़ेसे तथा जो शूद्र मंत्री हो वह जलसे भरे मिट्टीके घड़ेसे उसका अभिषेक करे।

मंत्रियोंकी संख्या

मंत्रियोंकी कोई संख्या निश्चित नहीं थी। उशना तथा बृहस्पतिके मतानुसार क्रमशः २० तथा १६ मंत्री होने चाहिए मनुस्मृतिमें ७ या ८ मंत्रियोंके रखनेका आदेश है। छत्रपति शिवाजीने ८ मंत्रियोंका मण्डल संघटित किया था। इन्द्रकी मन्त्रिपरिषदमें एक हजार ऋषि थे। चाणक्यका कहना है कि मंत्रियोंकी संख्या अवस्थानुसार घटायी बढ़ायी जा सकती है। शुक्राचार्यने १० प्रकारके मंत्रियोंका उल्लेख किया है:–१–पुरोहित, २ प्रतिनिधि, ३ प्रधान, ४ सचिव, ५ मंत्री, ६ पण्डित, ७ प्राड्विवाक, ८ अमात्य, ९ सुमन्त्र तथा १०—दूत।

प्रत्येक सदस्यकी सहायताके लिए दो-दो सहायक मंत्री नियुक्त किये जाते थे। पुरोहित धर्मविभागका मुखिया था। उसका मुख्य काम राजाको धार्मिक विषयोंमें सलाह देनेका था। राजाके प्रतिनिधि का काम पुरोहित करता था। प्रधान प्रत्येक विषयमें राजाको सलाह दिया करता

था, इसे हम प्रधानमंत्री कह सकते हैं। सचिवके जिम्मे युद्धविभाग था मंत्री, जिसे 'ब्राह्मसचिव' भी कहा करते थे, विदेशी राष्ट्रोंके बारेमें राजाको सलाह दिया करता था। पंडित शिक्षा विभागका, प्राड्विवाक राजनियमवाले विभागका, अमात्य कृषिविभागका तथा सुमन्त अर्थविभागका काम करता था। दूत नामका मंत्री राजा की ओरसे दूसरे देशोंमें आने-जानेका कार्य करता था।

कौटिल्य अपने अर्थशास्त्रमें अन्य नीतिज्ञोंके मतोंका उल्लेख करते हुए लिखता है कि मन्त्रिपरिषदके सदस्योंकी संख्या निश्चित करनेकी आवश्यकता नहीं, वह तो राजा अपने सामर्थ्यानुसार रख सकता है। कमसे कम ३ या ४ मन्त्री अवश्य रखे जाय। एक मन्त्री स्वेच्छापूर्वक शासन करने लगता है। दो मन्त्री आपसमें मिल जाते हैं, जिससे काम बिगड जानेकी सम्भावना रहती है। तीन या चार मंत्रियोंके होनेसे यह दोष बडा कठिनतासे उत्पन्न होता है।

मंत्रियोंके कार्य

राजाके ऊपर नियन्त्रण रखना सभाओंका मुख्य काम था। शुक्राचार्यका कहना है कि सभासदोंको अन्यायी राजा की कदापि उपेक्षा न करना चाहिए, अन्यथा वे राजाके ही साथ अधोमुख होकर नरक में गिरेंगे-

अधर्मतः प्रवृत्तं तन्नोपेक्षेरन्सभासदः।
उपक्ष्यमाणाः सनृपा नरकंयान्त्यधोमुखाः॥

शुक्रनीतिमें आगे लिखा है कि जो मंत्री राजाको अपने बशमें नहीं कर सकते, वे मंत्री कहलाने योग्य नहीं। उन्हें तो सजी स्त्रियोंके समान समझना चाहिये। याज्ञवल्क्यके शब्दोंमें जिन सभासदोंके सामने सत्यअसत्यसे तथा धर्म-अधर्मसे दबाया जाता है, वे शीघ्र नष्ट हो जाते हैं-

यत्र धर्मो ह्यधर्मेण सत्यं यत्रानृतेन च।
हन्यते प्रेक्षमाणानां हतास्तत्रसभासदः॥

अर्थात् यदि राजा मनमानी काम करने लगे तो सभासदोंको उसे रोकना चाहिये। ऐसा न करनेपर सभासद पापके भागी होंगे।

मन्त्रियोंको राजाके हिताहितकी अपेक्षा प्रजाके हिताहितका अधिक ध्यान रखना पडता था। इस सम्बन्धमें शुक्राचार्यके ये शब्द उल्लेखनीय हैं-

अहितंचापि यत्कार्यं सद्यः कर्तुं यदौचितम्।
अकृतु यद्धितमपि राज्ञः प्रतिनिधिः सदा।
हितं राज्ञश्चाहितं च लोकानां तन्नकारयेत्।

अर्थात् यदि किसी कामके करनेमें राजाकी हानि होती तथा प्रजाकी भलाई होती हो तो सभासद उस कामको अवश्य करें। इसी तरह जिस काममें राजाका भलाई होती हो, किन्तु प्रजाका अहित होता हो तो उसे कदापि न करना चाहिये। यही नहीं, राष्ट्रके लिए राजा हानिकर सिद्ध होनेकी दशामें सभासद उसे सिंहासनसे उतार देते हैं। राजसभाने ही अविश्वासका प्रस्ताव पासकर महारानी लीलावतीको राजसिंहासनसे उतारा था। राष्ट्रके लिए कानून बनाना तथा उच्च पदाधिकारियोंको नियत करना आदि सभी प्रमुख काम राजसभाके अधिकारमें ही थे।

मन्त्रियोंपर भी नियन्त्रण

मंत्रियोंको अनेक अधिकार प्राप्त थे। फिर भी क्या मजाल कि कोई मंत्री उच्छृंखल होने पाता? राज्यने उनपर भी नियन्त्रण रखनेके लिए कडे नियम बनाये थे। यदि कोई सभासद राजनियमका उल्लंघन करता पाया जाता था तो उसे भी साधारण अपराधियोंकी भांति न्यायालयके सम्मुख खडे होकर अपनी सफाई देनी पडती थी। याज्ञवल्क्यने तो स्पष्ट लिखा है कि न्यायालयको चाहिये कि वह सभासदको दूसरे अपराधियोंसे दूना दण्ड दे-

रागाल्लोभाद्भयाद्वापि स्मृत्यपेतादिकारिणः।
सभ्या पृथक्-पृथक् दण्ड्याः विवादाद् द्विगुणं दमम्॥

अग्निपुराण तो सभासदको इससे भी कठोर दण्ड देनेके लिये कहता है। उसमें लिखा है कि यदि सभासद जैसा बडा अधिकारी प्रबन्धमें गडबड करता है तो न्यायालयको चाहिये कि वह शीघ्र ही इसकी समस्त सम्पत्ति छीननेकी आज्ञा निकाले और अपराधी को देशनिर्वासनका दंड दे।

अतएव यह बिलकुल भ्रांत धारणा है कि हिंदू जाति बहुत पहलेसे ही निरंकुश शासकों द्वारा शासित होती आयी है तथा यहां किसी प्रकारका प्रजातन्त्र-विधान नहीं था। आधुनिक अन्वेषणके बलपर हम गर्वपूर्वक कह सकते हैं कि जिस प्रजातंत्र प्रणालिको लोग पश्चिमी देशोंके सांस्कृतिक विकासका वरदान मानते हैं, प्राचीन भारतमें वह अत्यन्त आदर्श ढंगपर काम कर रही थी। (सन्मार्गसे)

ऋग्वेद मंडल १ सूक्त २५ का हिन्दी रूपान्तर

[अनुवादक—श्री पाण्डेय कपिलदेवनारायण सिंह]

(ऋषि—शुनः शेपः । देवता—वरुण । छन्दस्—गायत्री)

तृचा—१

यच्चिद्धि ते विशो यथा प्र देव वरुण व्रतम् ।
मिनीमसि द्यविद्यवि ॥ १ ॥

मा नो वधाय हत्नवे जिहीळानस्य रीरधः ।
मा हृणानस्य मन्यवे ॥ २ ॥

वि मृळीकाय ते मनो रथीरश्वं न संदितम्
गीर्भिर्वरुण सीमहि ॥ ३ ॥

हे वरुण ! यद्यपि तव नियमोंका हम करते नित ही उल्लंघन,
फिर भी तू अपने वधकारी शस्त्रोंका मत करना प्रहार ॥१॥
यह घृणित, किंतु मत समझो तुम इसको निज रोषोंका भाजन,
हम ढीला कर देंगे तेरे मनके बंधन को, हे उदार ॥२॥
जैसे रथ-योद्धा थके अश्व का बंधन ढीला करता है,
तव बिनती कर हम वैसे ही तव दूर करेंगे क्रोध-भार ॥३॥

तृचा—२

परा हि मे विमन्यवः पतन्ति वस्यइष्टये ।
वयो न वसतीरुप ॥ ४ ॥

कदा क्षत्रश्रियं नरमा वरुणं करामहे ।
मृळीकायोरुचक्षसम् ॥ ५ ॥

तदित्समानमाशाते वेनन्ता न प्र युच्छतः ।
धृतव्रताय दाशुषे ॥ ६ ॥

धन-लाभ हेतु मेरी विशिष्ट स्तुति जाती है तेरे समीप,
जैसे उड उड उड उड पंछी नीडों में अपने हैं जाते ॥ ४ ॥
उस सागर-स्वामी, नर-पुंगव, क्षत्रिय-भूषण का आमंत्रण,
कब करें ? कि उस भू-स्वामी की अनुकम्पासे हम सुख पाते ॥५॥
वे मित्रवरुण दें एक साथ निज ध्यान हमारी बिनती पर,
वे दूरदर्शिता से अपने धृतव्रत को भूल नहीं पाते ॥ ६ ॥

तृचा ३

वेदा यो वीनां पदमन्तरिक्षेण पतताम् ।
वेद नावः समुद्रियः ॥ ७ ॥

वेद मासो धृतव्रतो द्वादश प्रजावतः ।
वेदा य उपजायते ॥ ८ ॥

वेद वातस्य वर्तनिमुरोर्ऋष्वस्य बृहतः ।
वेदा ये अध्यासते ॥ ९ ॥

उडते नभ में पक्षीगण के पथ से अवगत हैं देव वरुण,
सागर में चलते नावों के पथ से अवगत है देव वरुण ॥७॥
वह वरुण नियामक अवगत है बारह मासों से, और उपज,
उन बारह मासों की, मलमासों से अवगत हैं देव वरुण ॥८॥
वह अवगत है मारुत के वन्य विशाल बृहत् पथसे पूरा,
मारुतके पथके अधिवासी से भी अवगत हैं देव वरुण ॥९॥

तृचा ४

नि षसाद धृतव्रतो वरुणः पस्त्यास्वा ।
साम्राज्याय सुक्रतुः ॥ १० ॥

अतो विश्वान्यद्भुता चिकित्वाँ अभि पश्यति ।
कृतानि या च कर्त्वा ॥ ११ ॥

स नों विश्वाहां सुक्रतुरादित्यः सुपथां करत् ।
प्र ण आयूंषि तारिषत् ॥ १२ ॥

सब विश्वजनीन सुकृत्यों के सम्राट बने रहने के हित,
वह वरुण नियामक अपने जलके गृहमें करता है निवास॥१०॥
सब हुई तथा अब जो होंगी अद्भुत बातें इस जगती में-
उन सबकी करता देखरेख बैठे अपने गृह जलधिवास ॥११॥
वह सुकृति सुशोभित अदितिपुत्र, कर देवे सबका पथ सुखकर,
वह देव वरुण करदे लम्बा हम सबका जीवन-आयुपाश॥१२॥

तृचा ५

बिभ्रंद्द्रापिं हिंरण्ययं वरुंणो वस्त निर्णिजंम् ।
परि स्पशो नि षेदिरे ॥ १३ ॥
न यं दिप्संन्ति दिप्सवो न द्रुह्वाणो जनानाम् ।
न देवमभिमांतयः ॥ १४ ॥
उत यो मानुषेष्वा यशश्चक्रे असाम्या ।
अस्माकमुदरेष्वा ॥ ५१ ॥

वह कवच पहनता सोनेका, वह वस्त्र श्वेत धारण करता,
वह देव वरुण निज गुप्तचरोंसे सदा घिरा ही है रहता ॥१३॥
अभिमानी हानि न कर सकते वञ्चक ठग सकते नहीं जिसे,
जो घृणा मानवोंसे करता वह घृणा न उससे कर सकता॥१४॥
जिसके उज्वल यश से मानव मानव तक पूरा परिचित है,
अधिकाधिक परिचित वे मानव जिनकी वह उदरपूर्ति करता१५

तृचा ६

परां मे यन्ति धीतयो गावो न गव्यूंतीरनु ।
इच्छन्तींरुरुचक्षसम् ॥ १६ ॥

सं नु वोंचावहै पुनर्यतों मे मध्वाभृंतम् ।
होतेंव क्षदंसे प्रियम् ॥ १७ ॥
दर्शं नु विश्वदंर्शतं दर्शं रथमधि क्षमिं ।
एता जुंषत मे गिरंः ॥ १८ ॥

उस दूरदेशस्थित वरुण देव के पास जाय विनती मेरी,
जैसे गौएँ जाती हैं लहलह हरी चली की शाला को॥ १६ ॥
आओ, आपस में बात करें, होता सम मधुका करें पान,
मैंने भर दी है मधुर सोम की हालासे मधु-प्यालाको॥१७॥
वह दर्शनीय में देखरहा हूं उसका रथ छू रही धरा,
लगता है जैसे सुन ली उसने मेरी स्तुति को,ज्वालाको॥१८॥

तृचा ७

इमं मे वरुण श्रुधी हवंमद्या च मृळय ।
त्वामंवस्युरा चंके ॥ १९ ॥
त्वं विश्वंस्य मेधिर दिवश्च ग्मश्चं राजसि ।
स यामंनि प्रति श्रुधि ॥ २० ॥
उदुंत्तमं मुमुग्धि नो वि पाशं मध्यमं चृत,
अवाधमानिं जीवसें ॥ २१ ॥

सुन लो मेरी स्तुति आज वरुण, तुम दयादृष्टि फेरो मुझ पर,
तुझको आमंत्रित करता हूं,मैं शरण चाहता हूं तेरी ॥१९॥
तुम सकल विश्वके मेधावी, तुम स्वर्ग-पुरीके हो स्वामी,
हो धरती के आधार तुम्हीं,इस संकटमें सुन लो मेरी॥२०॥
पैरों के बन्धन दो निकाल तुम अब काटो कँटि के बन्धन,
जी सकूँ,अतः अब तो खोलो ग्रीवाकी ग्रन्थी को मेरी ॥२१॥

आर्य संस्कृतिपर कुठाराघात

(' हिन्दुजातिका उत्थान-पतन ' पर एक दृष्टि)

लेखक- श्री शिवपूजनसिंहजी ' कुशवाहा ' पथिक, कानपुर

(क्रमशः)

शास्त्रीजी—(पृष्ठ १५८) ... "वेदों को नित्य तथा परमात्मा का निःश्वास माननेवाले सायण भट्ट भास्कर, स्कन्दस्वामी, शङ्कर, रामानुज, वल्लभ आदि आचार्य गण संहितादि वैदिक ग्रंथोंमें इतिहास मानते हैं । "

समीक्षा— श्री सायण, महीधर, शङ्कर, रामानुज के लेख प्रामाणिक नहीं, इनसे भी भूलें हो सकती हैं । आप नेत्र बंद करके इनके लेखों को मान सकते हैं पर मेरे पास तो तर्क की कसौटी है । आपने स्कन्दस्वामीका नाम व्यर्थ ही लिखा है, वे तो वेदों में इतिहास मानते ही नहीं हैं । देखिए—

सायण से लगभग एक सहस्र वर्ष प्राचीन ऋग्भाष्यकार आचार्य स्कन्द स्वामी अपनी निरुक्त की टीका भाग २ पृष्ठ ७८ पर लिखते हैं—

> "एवमाख्यान स्वरूपाणां मन्त्राणां यजमाने
> नित्येषु च पदार्थेषु योजना कर्तव्या । एष
> शास्त्रे सिद्धान्तः।... औपचारिको मन्त्रे-
> ष्वाख्यान समयः । परमार्थे नित्यपक्ष इति
> सिद्धम् " ॥

अर्थात् " इसी प्रकार जिन जिन मंत्रोंमें आख्यान = इतिहासका वर्णन किया गया है, उन सब मंत्रोंको यजमान परक अथवा नित्यपदार्थोंमें योजना कर लेनी चाहिए । यह निरुक्त शास्त्रका सिद्धान्त है...मंत्रों में आख्यान = इतिहासका सिद्धान्त औपचारिक अर्थात् गौण है । वास्तव में तो नित्यपक्ष ही मंत्रोंका विषय है" । ५२

एवं-आचार्य वररुचि अपने ' निरुक्त समुच्चयमें (पृ० ७१) स्कन्दस्वामी के शब्दोंमें ही कहता है—

> " औपचारिको मन्त्रेष्वाख्यानसमयो
> नित्यत्वविरोधात् । परमार्थेन तु नित्य--
> पक्ष एव इति नैरुक्तानां सिद्धान्तः " ।

अर्थात्—मंत्रों में इतिहास औपचारिक (गौण) है, क्योंकि इतिहास माननेसे वेदके नित्यत्व में विरोध हो जायगा । परमार्थसे तो नित्यपक्ष ही (ठीक) है । यह नैरुक्तों का सिद्धान्त है । ५३

अतएव वेदोंमें कोईभी इतिहास नहीं है तथा न किसी ऋषि व ऐतिहासिक राजाओंके नाम हैं । ५४

शास्त्रीजी—" यास्कने भी वैदिक इतिहासोंका कई बार उल्लेख किया है ।........ ....."(पृष्ठ १५८)

समीक्षा-श्री यास्ककृत निरुक्त में कोई इतिहास नही हैं । आपने यास्कके पूर्वपक्षको देख लिख मारा है । वास्तवमें वहां कोई इतिहास नहीं है । आप वेदाचार्य पं० ब्रह्मदत्तजी जिज्ञासु कृत " निरुक्तकार और वेदमें इतिहास नामक पुस्तक तथा पं० चन्द्रमणिजी ' विद्यालङ्कार ' पालीरत्न कृत निरुक्त भाष्य (वेदार्थ० दीपक) पढिए, आपको स्पष्ट ज्ञात हो जायगा कि यास्क के मत में वेदोंमें कोई इतिहास नहीं है । अतएव शुनःशेप सूक्त में नरमेधका कोई प्रसग नहीं है ।

वेदार्थ करनेकी शैली ।

आपने पृष्ठ १५८से १७६ तक वेदार्थ करने की शैली पर विचार किया है पर वास्तव में आप वेदार्थ करने की शैलीकी गहराई तक नहीं पहुँचे हैं । महर्षि

---

५२ पं. ब्रह्मदत्तजी जिज्ञासु, वैयाकरणशिरोमणि, वेदाचार्य कृत " यजुर्वेदभाष्य विवरण " प्रथमभाग, प्रथम संस्करण, भूमिका पृष्ठ ९३

५३. वही.

५४. देखो. मासिका पत्रिक " वेदवाणी " काशी वर्ष १, अगस्त १९४९ ई अङ्क १२, १, २. में प्रकाशित मेरा ' वेदोंमें कथित ऐतिहासिक नामोंका रहस्य "शीर्षक लेख ।

*

दयानन्दकृत वेदार्थ करने की शैली ही सर्वोत्तम है और आप वेदोंके सत्यार्थ समझ सकते हैं अन्यथा अन्धकार में रहेंगे। इसके लिए आप मेरी लिखी हुई महर्षि दयानन्दकृत वेदभाष्यानुशीलन " ५५

तथा पं. विश्वनाथजी विद्यालंकार कृत " ऋषि दयानन्द की वेद भाष्य शैली " ग्रन्थों को पढिए (पृष्ठ १६१)

शास्त्रीजी—" वेदों में कई जगह यह लिखा मिलता है—" यजमानस्य पशून् पाहि, अविं मा हिंसीः; गां मा हिंसीः; एकशफं मा हिंसीः " इत्यादि।

अर्थ-यजमानके पशुओंकी रक्षा करो; भेड मत मारो; गाय मत मारो; एक खुरवाले पशु को मत मारो इत्यादि। पर यहां व्यर्थ वा केवल उदरपूर्ति के लिए पशु-वध का निषेध है; यज्ञ तथा श्राद्ध के लिए नहीं:, क्योंकि मनु इसमें प्रमाण हैं।

'मधुपर्के' च यज्ञे च पितृदैवतकर्मणि।
अत्रैव पशवो हिंस्या नान्यत्रेत्यब्रवीन्मनु.
(५।४१)... पुनश्च " या वेदविहिता
हिंसा नियताऽस्मिंश्चराचरे। अहिंसामेव
तां विद्याद् वेदाद्धर्मोहि निर्बभौ (५।४४)

समीक्षा—आपने यहाँ अच्छा तर्क किया कि उदर-पूर्ति के लिए पशुवध निषेध है, यज्ञ, श्राद्धके लिए नहीं, पर आपकी यह कोरी कल्पना और थोथा तर्क है। यज्ञमें किसी भी प्रकार का पशुवध विहित नहीं है यथा—

" उपावसृज त्मन्या समञ्जन्, देवानां पाथ
ऋतुथा हवींषि। वनस्पतिः शमिता देवो अग्निः,
स्वदन्तु हव्यं मधुना घृतेन॥"
(यजु० २९।३५, अथर्व० ५।१२।१०)

पाथ, हवींषि, मधुना, घृतेन—ये चारों पद चारों प्रकारके द्रव्योंका ही हवन करना उपदिष्ट करते हैं। अतः यज्ञमें उन्हीं का ग्रहण करना योग्य है, प्राणिवध-जन्य मांस का नहीं।

आपने जो मनु० ५।६१ का प्रमाण दिया है वह प्रक्षिप्त है, क्योंकि " मधुपर्क यज्ञ और श्राद्ध तथा देवकर्म इनमें ही पशुवध करे अन्यत्र नहीं करे, 'यह मनुने कहा है' यहां श्लोक मिलानेवाले के हृदय में यह खटका था कि शायद कोई न माने इसलिए लिख दिया कि 'यह मनुने कहा है'। यदि मनुका श्लोक होता तो वह स्वयं ऐसा क्यों लिखता? आपने मनु ५।४४ का प्रमाण दिया है। इसका तात्पर्य कुछ और है। देखिए-

"इस श्लोकमें जो वेद विहित हिंसा नियत है उसको अहिंसा ही समझना चाहिए। वेदसे ही धर्म निकला है।"

अर्थात्-"जिन स्थानों पर दण्डका विधान है वहाँ हिंसाके डरसे हट नहीं जाना चाहिए अन्यथा महती हानि होने की आशङ्का है। यदि बच्चेको दण्ड न दें तो वे बिगड जायेंगे। यदि राजा हिंसाके भयसे चोरको दण्ड न दे तो चोरी बढ जायगी। इसलिए जिन स्थानों पर वेदने प्राणियोंके उपकारार्थ किसीको पीडा पहुँचाने का विधान किया है उसको हिंसा की कोटि में ही न रखना चाहिए।" ५६

सामवेद भाष्यकार-पं. तुलसीरामजी स्वामी'शास्त्री'मेरठ लिखते हैं:-

"इस जगत् में जो वेदविहित हिंसा चराचर में नियत है, उसको अहिंसा ही जाने (हिंसक मनुष्यों से सिंह सर्पादिके दण्डसे तात्पर्य है। इसीको अगले श्लोकमें अहिंसकोंके निषेध से स्पष्ट किया है) क्योंकि वेदसे धर्मका ही प्रकाश हुआ है।"५७

आचार्य पं. नरदेवजी शास्त्री, वेदतीर्थ इस श्लोक पर लिखते हैं:—

"इस विश्व संसारमें दुष्टों आतमचारियों क्रूरों पापियों को जो दण्डदानरूपी हिंसा वेदविहित होनेसे नियत है उसे अहिंसा ही समझना चाहिए, क्योंकि वेदसे ही यथार्थ धर्म का प्रकाश होता है।" ५८

राजर्षि मनुजीने अपने सिद्धान्तको अगले श्लोकमें स्पष्ट किया है—

"योऽहिंसकानि भूतानि हिनस्त्यात्मसुखेच्छया
स जीवश्च मृतश्चैव न क्वचित्सुखमेधते॥"
(मनु० ५।४५)

५५—श्री जयदेव ब्रदर्स, आत्मारामपथ, बडोदा द्वारा प्रकाशित।

५६- पं. गङ्गाप्रसाद उपाध्याय एम.ए. सम्पादित "मनुस्मृति हिन्दी अनुवादसहित.शुद्ध, परिष्कृत संस्करण, पृ० ३११.

५७-' मनुस्मृति-भाष्य '(१५ वाँ संस्करण देहली) पृ. २७६.

५८—" यज्ञमें पशुवध वेद-विरुद्ध " द्वितीय संस्करण, पृ. ३८

अर्थात् जो निहत्थे, निरपराधी, अहिंसक प्राणियों को अपने सुख की इच्छासे मारता है, वह जीता हुआ और मरा हुआ दोनों अवस्थाओंमें कहीं भी सुख को नहीं पाता।

दुष्टोंको दण्ड देना हिंसा नहीं प्रत्युत अहिंसा है। स्वयं मनु ने लिखा है—

गुरुं वा बालवृद्धौ वा ब्राह्मणं वा बहुश्रुतम्।
आततायिनमायान्तं हन्यादेवाविचारयन्॥
नाततायिवधे दोषो हन्तुर्भवति कश्चन।
प्रकाशं वाऽप्रकाशं वा मन्युस्तं मन्युमृच्छति॥
(मनु० ८।३५०-३५१)

अर्थ–आततायीको बिना सङ्कोच के मार दे चाहे वह गुरु हो, या बालक, बूढ़ा, ब्राह्मण या वेदोंका पढ़ा हुआ। आततायीको मारने में मारनेवालेको दोष लगता नहीं, चाहे सबके सामने मारना पड़े या एकान्तमें, क्योंकि क्रोधको क्रोधसे मारना मानो क्रोध की क्रोधसे लड़ाई है।

इसी प्रकार वेदने स्थान स्थानपर दुष्टदमनकी आज्ञा देते हुए इन्हें दण्ड देनेका प्रतिपादन किया है। यथा—

" रन्धया शासदव्रतान् " (ऋग्वेद मण्डल १, सूक्त ५१ मंत्र ८)

व्रत, धर्म, यम-नियम, सत्यव्यवहार, सत्यभाषण आदि व्रतोंका न पालन करनेवालोंको दण्ड दिया जाता है।

ऋग्वेद मण्डल ८, सूक्त ८ का देवता "इन्द्रः वनस्पतिः सेना हननश्च" है, इसमें दुष्टों, शत्रुओंको दण्ड देनेके लिए स्पष्ट विधान है।

परन्तु वेदविहित हिंसा करना महापाप है, अधर्म है। मनुजी भी लिखते हैं:—

"नावेदविहितां हिंसामापद्यपि समाचरेत्"।
(मनु० ५।४३)

गृहस्थाश्रम में आचार्य कुल (ब्रह्मचर्याश्रम में, वानप्रस्थाश्रम) में, रहता हुआ आत्मगौरवशील द्विज कष्ट पड़ने पर भी वेदविरुद्ध हिंसाको न करे॥

शास्त्रीजी (पृष्ठ १६४) " ...... इतना ही नहीं, बल्कि यज्ञों में वे गोवध तक किया करते तथा गोमांस भी खाया करते थे।"

समीक्षा– आर्यलोग यज्ञों में गोवध नहीं करते तथा गोमांस भक्षण नहीं किया करते थे, यह मैं पीछे वेदके प्रबल पुष्ट प्रमाणोंसे प्रदर्शित कर चुका हूँ, यहाँ उन प्रमाणोंको देना पिष्टपेषण होगा।

महर्षि दयानन्दजी महाराजने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ "सत्यार्थ-प्रकाश" त्रयोदश समुल्लास में ४६८ तौरेत यात्रा की पुस्तक 'प. २४। आ० ५। ६। ८। १२ में मूसाका बैलों का बलिदान, लोहू पात्रोंमें रखना, वेदी पर छिड़कना .....की समीक्षा करते हुए स्पष्ट लिखा है:-

" अब देखिए। ये सब जङ्गली लोगों की बातें हैं वा नहीं? और परमेश्वर बैलों का बलिदान लेता और वेदी पर लोहू छिड़कता यह कैसी जङ्गलीपन, असभ्यता की बात है? जब ईसाइयोंका खुदा भी बैलोंका बलिदान लेवे तो उस के भक्त गाय के बलिदानकी प्रसादी से पेट क्यों न भरें और जगत् की हानि क्यों न करें? ऐसीऐसी बुरी बातें बाइबल में भरी हैं। इसी के कुसंस्कारोंसे वेदों में भी ऐसा झूठा दोष लगाना चाहते हैं परन्तु वेदों में ऐसी बातों का नाम भी नहीं।...यहाँ महर्षि दयानन्दजीने लिखा है कि वेदोंमें ऐसी बातोंका नाम भी नहीं। पं० गङ्गाप्रसाद उपाध्याय एम. ए. अपनी पुस्तक ५९ में लिखते हैं:—

विविध ग्रन्थकारोंने समय २ पर गोमांस और अश्वमांस भक्षण के प्रश्नपर विचार किया है। वर्तमान हिन्दू जनता इन दोनों प्रथाओंको घृणाकी दृष्टि से देखती है। ऐसा करना कहाँ तक युक्तियुक्त है, यह भी एक प्रश्न है। श्री अविनाशचन्द्र अपनी सुप्रसिद्ध पुस्तक ऋग्वैदिक इण्डिया में लिखते हैं:"यह तर्क उपस्थित किया जा सकता है कि यद्यपि बैलों की बलि चढ़ाई जाती थी और उनका मांस पकाकर देवता को अर्पण किया जाता था तथापि याज्ञिकों वा आर्यों द्वारा वह खाया न जाता था; परन्तु ऋग्वेद ६।३९।१ में भारद्वाज ऋषि इन्द्र से प्रार्थना करते हैं कि वह उन्हें और यजमानोंको मुख्य पदार्थके रूपमें गोमांस देवें "(पृ० ७५)"

मुझे आश्चर्य है कि विद्वान् लेखकने इस मंत्रको क्यों उद्धृत किया है? इस वेद मंत्रके किसी अंशसे भी गोमांस के उल्लेख की पुष्टि नहीं होती। ग्रन्थकार महोदय अपनी स्थापना की अप्रमाणिकताको अनुभव किए बिना न रह सके क्योंकि उपर्युक्त वाक्य के ठीक नीचे निम्नलिखित

५९. "वैदिक संस्कृति" प्रथम संस्करण, पृष्ठ ११०-से ११५ तक.

वाक्यांश उद्धृत किया गया है:– " निस्सन्देह इसका अभिप्राय यह लिया जा सकता है कि 'गौ' शब्द से गोमांस अभिप्रेत नहीं है अपितु दूध, मक्खन, दही और घी आदि अभिप्रेत हैं। यह व्याख्या भी संभव हो सकती है परन्तु प्रो० विल्सन के मतानुसार "वेदमें उसकी शाब्दिक व्याख्या की विरोधी कोई बात नहीं है।" (पृष्ठ ७५-७६)

बाद के कतिपय ग्रन्थोंमें गोमांस भक्षण का उल्लेख पाया जाता है। यह एक तथ्य है। पर यह सिद्ध नहीं होता कि वैदिककाल के आर्य गोमांस भक्षणके समर्थक थे। वेदोंमें इसका स्पष्ट उल्लेख नहीं है। गाय को 'अघ्न्या' कहा गया है। यजुर्वेद के प्रथम मंत्र में एक प्रार्थना आती है कि हमारी गौएं (अनमीवा अयक्ष्मा) रोगरहित हों और परमात्मा यजमान के पशुओंकी रक्षा करें। 'यज्ञ' शब्दका 'हत्या' से कोई सम्बन्ध नहीं है। यज्ञका अर्थ है शुभ कर्म (श्रेष्ठतमाय कर्मणे) 'यज्ञ' यजमान वा ऋत्विजके उल्लेख से पशुबलि की कल्पना कर लेना भयङ्कर भूल है। यह दुर्भाग्य की बात है कि बाद के विकृत कालोंमें यज्ञ के कतिपय गर्हित अनुष्ठानों के कारण यज्ञ और यजमान का रूप विकृत होकर उनका अर्थ पशुबली माना जाने लगा। वस्तुतः यज्ञ का अर्थ शुभ कर्म और यजमान का अर्थ शुभकर्मों का कर्त्ता है। संस्कृत में 'पितृयज्ञ' और 'अतिथि यज्ञ' का विधान है। स्पष्टतः इन शब्दों से यज्ञ का अर्थ माता पिता और अतिथिका वध नहीं निकाला जा सकता। इस प्रसङ्ग में हम उलझन पैदा करनेवाले एक और शब्दका उल्लेख कर सकते हैं। वह है 'गोघ्न'+इसका धात्वर्थ है गौवोंका वध करने वाला। परन्तु बादमें यह उन अतिथियोंके लिए प्रयुक्त होने लगा था जिनके लिए गौएँ वध्य मानी जाने लगी थीं। यह सत्य है कि हिन्दू इतिहासके कुछ कालोंमें यह भावना प्रचलित थी। इससे इन्कार करने से कोई लाभ नहीं परन्तु अकेले ऋग्वेद में ही यह शब्द एकबार प्रयुक्त हुआ है अन्य वेदोंमें इसका उल्लेख नहीं मिलता।

इसमें दो शब्द ' गोघ्नमुत पूरुषघ्नं ' आते हैं जिनका ग्रिफिथ महोदय ने निम्न प्रकार अनुवाद किया है:— ' हे वीर पुरुषोंको अपने आश्रय में बसानेवाले! पशुओं और मनुष्योंके हत्यारोंको दूर रख ! इस प्रकार हमको सुख प्राप्त हो ! हे देव ! तू हमें सुखी कर। ' यहाँ गोघ्न का अर्थ गौओंका हत्यारा है। वह पुरुषघ्न अर्थात् मनुष्योंके हत्यारे के साथ रखा गया है और परमात्मा से प्रार्थना की गई है कि वह सुख शान्तिका नाश करनेवाले इन दोनों को प्रजासे दूर रखे। क्या यह गोमांस भक्षण की अनुमति है? यह तो गोवध का स्पष्ट निषेध है। यह महत्वपूर्ण बात है कि वेदोंमें अन्य किसी स्थलपर ' गोघ्न ' शब्द का उल्लेख नहीं मिलता। अतिथि की भावना जिसके लिये गो-वध विहित माना गया है, बादके काल का सम्मिश्रण है। सम्भवतः वेदमें इस शब्द का समावेश गोमांसभक्षियों द्वारा हुआ है। भारत एक विशाल देश है जिसमें बुरे, भले, धार्मिक, अधार्मिक वेदको माननेवाले और न माननेवाले प्रत्येक प्रकारके लोग निवास करते हैं। इसके इतिहास में हजारों लाखों वर्षों तक इतना अधिक परिवर्तन हुआ है कि जो बात प्रत्यक्षतः वेदोंमें नहीं पाई जाती उसके लिए वेदोंको दोषी ठहराना नितान्त अनुचित और अन्यायपूर्ण होगा। आजकल भारत वर्षमें बहुतसे गोभक्षी वर्ग पाए जाते हैं। परन्तु वे वेदानुयायी नहीं हैं। यदि इन विनों कोई संस्कृत ग्रन्थ लिखा जाय तो उसमें स्वभावतः गोवध, गोमांस-भक्षण और गोमांस पाक का उल्लेख होगा। इस समय भी यज्ञों में गोमांस चढानेका वीभत्स कर्म करनेवाले हिन्दू विद्यमान हैं। यद्यपि उनकी संख्या अंगुलियों पर गिने जाने योग्य है। वैदिक ऋषियों एवं वैदिक आदर्शोंका दृढ

+आचार्य रामदेवजी एम.ए. अपने "भारत वर्षका इतिहास" (वैदिक तथा आर्षपर्व) तृतीयावृत्ति पृष्ठ १७५ में लिखते हैं "गोघ्न" शब्द 'गो' और 'हन' के योग से बना है। 'गो' के अनेक अर्थ हैं यथा वाणी, पृथ्वी, जल, स्वर्ग वा विशेषसुख, माता इन्द्रिय, नेत्र सूर्य, चन्द्र। 'हन' का अर्थ पाणिनि 'हिंसा' और 'गति' बतलाते हैं और 'गति' के अर्थ हैं ज्ञान, गमन और प्राप्ति अतः गोघ्नके निम्नलिखित अर्थ हो सकते हैं:-(१) जिसके लिए जलकी प्राप्ति की गई हो अर्थात् जिसके लिए जलका प्रबन्ध किया गया हो। (२) जिसके लिए सुखकी सामग्री प्राप्त की गई हो। (३) जिसका वाणी से सत्कार किया गया हो। (४) जिसकी ओर आँखें लगी हों।"-कुशवाहा ' पथिक '

इतिहास और उनकी परम्पराएं इस बातकी साक्षी है कि मांसके कारण नहीं वरन् माताके समान अपने दूधसे प्रजा का पोषण करनेके कारण गऊकी पूजा होती थी। गऊके पाँच अङ्गोंका (जिन्हें पञ्चगव्य कहते हैं) हमारे यहाँ विशेष महत्व रहा है। वे हैं दूध, दही, घी या मक्खन गोमूत्र और गोबर (क्षीरं दधि तथा चाज्यं मूत्रं गोमयमेव च) इनमें गोमांस सम्मिलित नहीं है। वेदोंमें अनेक स्थलों पर 'गो' शब्द का अर्थ उपर्युक्त पाँच पदार्थ किया गया है।

यह दुर्भाग्य की बात है कि वेदों के भाष्यकारोंने अपने निजी विचारों और मान्यताओंका वेदमें समावेश कर दिया है। उन्होंने वस्तुओं को वर्त्तमान कालके लोगोंकी आंखोंसे देखा इसलिए गड़बड़, उत्पन्न हो गई है। उदाहरण के लिए शतपथ ब्राह्मण (११३-४-१-१७) में 'अश्ववाल नामक' औषधिका उल्लेख आता है। इस शब्द का शाब्दिक अर्थ घोड़ेका बाल है परन्तु वास्तवमें इसका पशुके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। इसमें और घोड़े के बाल में सादृश्य होनेके कारण ही इसका नाम अश्ववाल पड़ा होगा।

इसी प्रकार अंग्रेजी 'काऊज लिप्स' (Cowsrips) (गौ ओष्ठ) नाम का पीले रङ्ग का एक सुगन्धित पुष्प होता है। यह गौ का कोई अंग नहीं होता परन्तु इसमें और गौ ओष्ठ में सादृश्य होगा इसलिए इसका नाम गौ ओष्ठ पड़ा है। यदि एक सौ वर्ष के पश्चात् लोग इस वास्तविकता को भूल जांय और इसके अर्थ गऊ और घोड़े का अङ्ग करने या मानने लग जांय तो क्या यह एक बड़ी भयंकर भूल न होगी इसलिए। उलझनों से बचने के लिए हमें बड़ी सावधानता से शब्दों की व्याख्या करनी चाहिए।"

पौराणिक पण्डित, शास्त्रार्थ महारथी पं० माधवाचार्यजी शास्त्री 'प्रभाकर-रिसर्चस्कॉलर' अपने लेख६०में लिखते हैं।

"......वेद-शास्त्र-पुराणोंमें गायको (क) 'विश्वधाया' 'अघ्न्या' और सर्व 'देवमयी' कहा गया है। (ख) इसके घातक की प्राणदण्ड देनेकी राजा को आज्ञा दी गई है और (ग) गो रक्षा के लिए प्राणों पर खेल जानेवाले पुरुष की स्वर्ग प्राप्ति होनेका वर्णन है। यथा—

(क) विश्वरूपं सर्वरूपं गोरूपम्
(अथर्व० ९।७।१—२६)
(ख) यदि नो गां हंसि तत्वासीस्तेन विध्यामः
(अथर्व० १।१६।४)
(ग) गोकृते ये तु हन्यन्ते शक्रलोकं व्रजन्ति ते। (महाभारत १००।११८)

इस प्रकार गोमाता जहाँ सनातनधर्मियों की सर्वस्व है वहाँ आर्य समाजियों की भी रक्षणीय निधि है। इसी लिए श्री स्वामी दयानन्द सरस्वतीजीने 'गोकरुणा निधि' पुस्तक लिखकर अपने अनुयायियोंको गोरक्षा का विशेष आदेश दिया है। सिक्ख ग्रन्थोंमें भी गाय की महिमा के अनेक स्थानोंमें वर्णन मिलते हैं। श्री गुरुगोविन्दसिंह जी ने तो अपने समस्त धर्म युद्ध का आधार गोरक्षा ही रखा था। वे श्रीमुख से अपने बनाए दशम ग्रन्थ (विचित्र नाटक) में फरमाते हैं कि—

(क) यही देहु आज्ञा तुरकको मिटाऊँ गऊ घातका दोष जगसे मिटाऊं। (छके छन्द ५)

सकल जगतमें खालसा पंथ गाजे। धर्म हिन्दू सभी भंड भाजे। बौद्धधर्म की तो आधारशिला ही अहिंसा है जिस में गौको प्रमुख स्थान मिला है। भारतीय यदि गौको केवल माता कहकर सन्मानित करते हैं तो वहां बौद्ध धर्मग्रन्थों में तो। (क) उसे माता, पिता, भ्राता, मित्र सब कुछ, कहा गया है। (ख) और गौमांस भक्षकको अपनी माता काही मांस खानेवाला बताया गया है। यथा-

(क) यथा माता पिता भ्राता अञ्ञे वापि च जातका गावो नो परमा मित्रा ब्राह्मण धन्मियसुत्त।

(ख) ये च खादंति गोमांस मातुमंस च खादये। (लोकनीति १५).

आर्य जगत् के सुप्रसिद्ध विद्वान् पं. धर्मदेवजी 'विद्यावाचस्पति सिद्धान्तालङ्कार' सम्पादक "सार्व देशिक" देहली अपने एक पत्र ६१ में लिखते हैं:—

---

६० दैनिक 'सन्मार्ग काशी अ० श्रावण २००४ संवत् रविवार में प्रकाशित 'गोवध बन्द हो' शीर्षक लेख
६१. लेखकके नाम दिनाङ्क १४, ३. ५० को बलिदान-भवन देहली से भेजा हुआ पत्र।

'वेदोंमें गोमांस ही नहीं, मांस खानेका न केवल विधान नहीं, किन्तु स्पष्ट निषेध है; ऐसा मेरा मन्तव्य है। गौके लिए अद्रि तृणमघ्न्ये' ऋ०; 'वत्संजातमिवाघ्न्या' (अ० ३।३०।१), 'अन्तकाम गोघातम्' (यजु० अ० ३०) इत्यादि में गोघातकको प्राणदण्ड देने का विधान है।"

शास्त्रीजी- (पृष्ठ १६४) :-" सायण-भाष्यके साथ ऋग्वेद का अध्ययन कीजिए और अपने पूर्वजों के काले कारनामोंकी सूची तैयार कीजिए। वे घोडे, गाय, बैल, सुअर भैंसे तथा भैंसेका मांस खाते थे (ऋ० १०।८६।१३ तथा १०।२८।३) एक स्थानपर इन्द्र ने अपने भोजन के लिए २० बैल मारनेको कहा है ऋ० (१०।८६।१४) एक एक वार सौ-सौ भैंसे भी काटे जाते थे (ऋ० ६।१७।११); घोडे, बैल, भेंड, और गायोंकी आहुति होती थी (ऋ० १०।९१। १४ तथा १०।१६९।३); जगह जगह कसाईखाने भी थे (१०।८९।१४); सोमलताको गोचर्म पर रखकर उसे पत्थर से कूटा जाता था (ऋ० ९।७९।४) पाठक गण क्रमशः निम्नोद्धृत उक्त वेदमंत्रोंका अवलोकन करें। ६३

(१) वृषाकपायि रेवती सुपुत्र आदु सुस्नुषे।
घसत्त इन्द्र उक्षणः प्रियं काचित् करं हवि-
र्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः" ऋ. (१०।८६।१३)

अर्थ- हे वृषाकपि (तन्नामधारी इन्द्र—पुत्र) की स्त्री! तुम धनशालिनी, उत्तम पुत्रवाली और सुन्दर पुत्र-वधू हो। तुम्हारे वृषों (सांडों) को इन्द्र खा जाएँ। तुम्हारे प्रिय और सुखकर हवि का वे भक्षण करें। इन्द्र सर्वश्रेष्ठ हैं।"

समीक्षा—यहाँ इस मंत्रका यह अर्थ नहीं होगा। वास्तव में 'इन्द्र' का अर्थ है- 'इन्द्रतेवैश्वर्यकर्मणः। (निरुक्त१०।८)

'इदि परमैश्वर्ये' धातुपाठे भ्वादिर्गणः।

अर्थात् 'इदि धातु परमैश्वर्य वा ऐश्वर्य अर्थमें आता है और उसीसे इन्द्र शब्द बना है।

'ईश, ऐश्वर्ये धातुपाठे अदादिर्गणः'।

ईश भी ऐश्वर्यार्थिक है इससे ईश्वर शब्द बना है। अतः इन्द्रका अर्थ 'ईश्वर' यास्क तथा पाणिनी आदि ऋषि-सम्मत है। वृषाका अर्थ साँड नहीं है वरन् 'वर्षति सिञ्चति यः स वृष.' जो जल से पृथ्वी को सींचे उसे वृष कहते हैं। "इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः" ३।१।१३५ इस सूत्रके अनुसार वृष् धातुसे 'क' प्रत्यय होकर 'वृष' शब्द सिद्ध हो जाता है।

अब मंत्रार्थ होगा-"हे (वृषाकपायि) सुखोंको मेघके तुल्य वर्षा करनेवाली प्रभुकी अपारशक्ति! हे (रेवति) ऐश्वर्यवाली! हे (सुपुत्रे) उत्तम पुत्रों, जीवोंवाली! हे (सु—स्नुषे) सुखदायिनि! (इन्द्रः) परमैश्वर्यवान् ईश्वर (उक्षणः) जगत्को धारण करनेवाले सूर्य आदि लोकोंको (प्रियम्) प्रीतिकारक (काचित्-करम्) सुखदाता (ते हविः) उत्तम अन्नके सदृश ही इस जगत् को (घसत्) प्राशन करता है, इसको प्रलयकालमें भक्षण कर जाता है। वही ऐश्वर्यवान् ईश्वर (विश्वस्मात्) सबसे (उत्तरः) श्रेष्ठ है।

(२) अद्रिणा ते मन्दिन इन्द्र तूयान्त्सुन्वन्ति
सोमान् पिवासि त्वमेषाम्। पचन्ति ते वृषभाँ
अत्सि ५ तेषां पृक्षेण यन्मघवन् हूयमानः॥
(ऋ १०।२८।३)

अर्थ—हे इन्द्र! अन्न कामनासे जिस समय तुम्हारे लिए हवन किया जाता है, उस समय यजमान शीघ्र—शीघ्र प्रस्तर—फलको परमादक सोमरस तैयार करते हैं। उसे तुम पीते हो। यजमान बैल (साँड) पकाते हैं। तुम उन्हें खाते हो।

समीक्षा— हे (इन्द्र) शत्रुनाशक! ऐश्वर्यसुखों के देनेवाले! (मंदिनः) स्तुतिशील जन (ते) आपके लिए (अद्रिणा) दृढ क्षात्रबलसे (तूयान्) शीघ्रगामी (सोमान्) वीर पुरुषों का (सुन्वन्ति) अभिषेक करते हैं। (त्वम् एषाम्) तू इनको (पिबसि) पालन करता है (ते) आपके लिए ही वे (वृषभान्) बलवान् पुरुषों को (पचन्ति) दृढ करते हैं, । हे (मघवन्) उत्तम ऐश्वर्यवान् तू (हूयमानः) सत्कारपूर्वक बुलाया जाकर (तेषां पृक्षेण) उनके ही स्नेह सम्पर्क से (अत्सि) इस महान् ऐश्वर्यका भोग करता है, वा उनको प्राप्त होता है।"

कहिए आपको इस अर्थ को मानने में क्या आपत्ति है। 'वृषभ' का अर्थ बैल लौकिक संस्कृतमें होता है, वैदिक संस्कृतमें नहीं। ६४ (अपूर्ण)

---

६३. तुलना करो "मासिक पत्रिका" गङ्गा का 'वेदाङ्क' प्रवाह२, जनवरी १९३२ई, तरंग१ पृष्ठ २१७में प्रकाशित साहित्याचार्य पं. महेन्द्र मिश्र "मग" (छतहार, तारापुर, भागलपुर) का ऋग्वेद की कुछ उल्लेखनीय बातें शीर्षक लेखक—कुशवाहा पथिक'

६४. वैदिक और लौकिक संस्कृत में बहुत अन्तर है, पढिए श्री वी. एस् घाटेकी Lectures on Rigveda

६३३ दीर्घश्रुतं रयिं अस्मे दधाना- प्रशंसित धन हमें दे।

६३७ अन्तिवामा वसूनि आभर, राधः चोदय— पास धन रखनेवाली वीरा धन भर देवे और धनको हमारे समीप ला देवे।

६३८ गोमत् अश्ववत् रथवत् इषं राधः नः दधती- गौवों घोडों और रथोंके साथ अन्न तथा धन हमें दो।

६३९ अस्मासु बृहन्तं ऋष्वं रयिं धा- हमें बडा विशाल धन दो।

६४० अर्वाचा बृहता ज्योतिष्मता रथेन अस्मभ्यं वामं यक्षि- बडे तेजस्वी रथसे हमें धन दो।

६४७।३ सुकृते वसूनि विदधाति- सत्कर्मकर्ताको धन देता है।

६५१ अश्वावतीः गोमतीः वीरवतीः घृतं दुहानाः विश्वतः प्रपीताः भद्राः उषासः नः सदं उच्छन्तु— घोडे गौएं और वीरोंसे युक्त घृत दुहनेवाली परिपुष्ट कल्याण करनेवाली उषाएं हमारे घरको प्रकाशित करें।

६५४ वनन्वती उषा दाशुषे मयः रत्नं— धनवती उषा दाताको सुख तथा धन देती है।

६५७ दीर्घश्रुत्तमं चित्रं राधः आभर- प्रशंसनीय धन दें।

६५८ सूरिभ्यः अमृतं वसुत्वनं श्रव गोमतः वाजान्— ज्ञानियोंको अपार धन, यश और गौओंवाले अन्न दो।

६६८।१ अस्मे महि द्युम्नं सप्रथः शर्म यच्छन्तु- हमें बडा तेजस्वी विस्तृत धनवाला सुख मिले।

६७४।१ उभयस्य वस्वः सातये- दोनों धनोंका दान हो।

६८१।२ देवजूतः रयिः नः उपो एतु— देवों द्वारा सेवित धन हमें मिले।

६८२।१ विश्ववारं पुरुक्षुं वसुमन्त रयिं धत्त — सबको स्वीकारने योग्य बहुत अन्नसे युक्त निवासक धन धारण करो।

६८२।२ शूरः अमिता वसूनि दयते— शूर अपरिमित धन देता है।

६८३ सुरत्नासः देववीतिं गमेम— उत्तम रत्न धारण करके यज्ञमें हम जाय।

६९५।३ कवितरः देवः गृत्सं राये जुनाति— ज्ञानी देव भक्तको धनके लिये प्रेरित करता है।

७२१ ये ईशानासः गोभिः अश्वैः वसुभिः हिरण्यैः स्वः नः दधते, विश्वं आयुः अर्वद्भिः वीरैः पृतनासु सह्युः— जो स्वामी गौवें, घोडे, धन, सुवर्ण और सुख हमें देते हैं, वे पूर्ण आयुकी अवधितक अश्वारोही वीरोंके साथ युद्धोंमें शत्रुका पराभव करते हैं।

७२४ मार्डीकं नव्यं सुवितं ईट्टे— सुखदायी नवीन सुखकी-धनकी-प्रशंसा करते हैं।

७३६ भूरेः यवसस्य रायः क्षयन्तौ— बहुत धन पास रखनेवाले।

७३८ प्रमतिं इच्छमानः विप्रः पूर्वभाज यशसं रयिं ईट्टे— विशेष बुद्धिकी इच्छा करनेवाला ज्ञानी प्रथम उपभोग लेने योग्य धनकी प्रशंसा करता है।

७५१ गोमत् हिरण्यवत् अश्ववत् वसु वनेमहि- गौओं, हिरण्य, घोडोंवाला धन प्राप्त करेंगे।

७५६ भुवनस्य भूरेः रायः चेतंती— पृथ्वीके सब धनोंको प्रेरणा करती है।

७६२।४ मघोनां राधः चोद— धनियोंके धनको प्रेरित कर।

७७०।१ सुवीर्यस्य रायः काम — उत्तम पराक्रमसे प्राप्त धनकी कामना हम करते हैं।

७७६ दिव्यस्य पार्थिवस्य वस्वः ईशाथे, कीरये रयिं धत्तं- दिव्य तथा पार्थिव धनके तुम स्वामी हो, कविको धन दो।

७८६ मनुष्ये दशस्या इरावती धेनुमती सुयवसिनी भूतं— मानवोंका हित करनेवाली तुम दोनो धान्यवाली, गौवाली उत्तम जौवाली हो।

७९१।२ सुवितस्य अश्वावतः पुरुश्चन्द्रस्य भूरेः रायः पर्च— सुविधाजनक घोडोंवाले तेजस्वी धनके संपर्क में रहो।

८६२ आयुधा संशिशानाः, हस्तयोः विश्वावसु दधानाः— शस्त्र तेजस्वी करते हैं, देनेके लिये हाथमें धन लेते हैं।

धन चाहिये। इसको (वार्यं, वरणीयं) स्वीकार करने योग्य, प्राप्त करने योग्य धन कहते हैं। ऐसा धन चाहिये। (स्पृहाय्यः) इच्छा करने योग्य धन हो, केवल पैसा नहीं, परंतु वर्णन करने योग्य धन चाहिये। धनोंमे (वामा) उत्तम पतिव्रता स्त्री, (गयः) घर, दुधारू गौवें, घोडे, रथ (आजकलके समयके अनुसार मोटरें,) उत्तम अन्न, सुंदर रूप, ओजस्वी तारुण्य आदिका समावेश होता है। घोडोंमें अश्व और अर्वा ये दो भेद हैं। अरब देशके घोडेको अर्वा (अरब, अर्वा) कहते है और अश्व दूसरा घोडा, देशी घोडा है। इन धनोंमे सुंदर रूप, सुडौल शरीर, तारुण्य, वृद्धावस्थामें भी टिकनेवाला तारुण्य, उत्तम पक्का घर, उत्तम पुष्टिदायक अन्नका समावेश होता है। यह सब ऐश्वर्य चाहिये।

यहा गौवें, घोडे, रथ तो है, पर हाथी नहीं है। यह विचारणीय बात है। हाथी तो वेदमें है।

मृगा इव हस्तिनः खादथा वना । ऋ. १।६४।७

' हाथी वनोंको खाते हैं' नोधा गौतम ऋषिका यह मन्त्र है। पर धनमें हाथीका निर्देश वेदमें नहीं है। गौवें घोडे रथ घर पुत्र आदि हैं, पर हाथी नहीं। आधुनिक संस्कृत वाङ्मयमें **' गजान्त-लक्ष्मी '** का वर्णन है। जहा हाथी हैं ऐसा धन। लक्ष्मीके चित्रमे हाथी अवश्य रहते हैं। हाथीपर सुवर्णकी अम्बरी रखकर उसमें राजाका बैठना ऐश्वर्यका लक्षण समझा जाता है। इन्द्रके पास भी ऐरावत है। पर वेदमें ऐरावतका अर्थ (इरावान्) जलपूर्ण मेघ ऐसा है। अस्तु। वेद मंत्रोंमें धन वर्गमे हाथीकी गणना नहीं है।

' सहस्री रयिः ' अर्थात् हजारों प्रकारका धन है ऐसा अनेक वार वेदमें कहा है। बल, बुद्धि, चातुर्य, विद्या, अधिकार, आरोग्य, उत्तम मित्र, मान्यता, यश आदि अनेक प्रकारके धन होते हैं। वे सब धन चाहिये। जिससे मनुष्य धन्य होता है उसका नाम धन है। मनुष्य अनेक प्रकारोंसे धन्य होता है, वे सब धन हैं। इसलिये सहस्रों प्रकारके धन हैं ऐसा कहा है। ये सब धन मनुष्यको चाहिये।

धनका संरक्षण

धन प्राप्त करना सहज बात है, परंतु उसका संरक्षण करना कठिन है। इसलिये वेदमंत्रोंमें धनके संरक्षणका भी उपदेश किया है—

५ यातुमावान् यावा यं रयिं न तरति ।

' दुष्ट डाकू जिसको लूट नहीं सकता ' ऐसा धन चाहिये। अपने धनका इतना संरक्षण होना चाहिये।

२३५ परिवृतं रायः ।

' गुप्त धन ' अर्थात् सुरक्षित धन होना चाहियें।

३२९ नः रायः पर्वताः आपः ओषधीः वनस्पतिः द्यौः पृथिवी परिपासतः ।

हमारे धनका संरक्षण पर्वत, जलप्रवाह नदियां, औषधि, वनस्पतियां, पृथिवी, आकाश ये करते है। ' इससे धनकी ठीक कल्पना आसकती है। पर्वत और पर्वतोंपर बनाये कीलोंसे राष्ट्रका संरक्षण होता है। जल प्रवाहों और नदियोंमें भी राष्ट्र और ग्रामोंका संरक्षण होता है, औषधि वनस्पतियोंसे शरीरके आरोग्यरूपी धनका संरक्षण होता है। पृथिवी और आकाश ये भी राष्ट्ररूपी धनके संरक्षक है। यह वर्णन राष्ट्ररूप धनका विशेषतया है। अन्य धन गौण अर्थसे ले सकते हैं।

४११ सहावा धनपतिः ।

शत्रुका पराभव करनेवाला धनी हो। अपनी शक्तिसे वह शत्रुका पराभव करे। ऐसा धनी होगा तो वह अपना धन सुरक्षित रख सकता है।

५ रयिं धिया नः दाः

' धनको बुद्धिके साथ हमें दो ' अर्थात् हमें बुद्धि भी चाहिये और धन भी चाहिये। बुद्धि न रही और केवल धन ही रहा, तो हीन मार्गसे जाकर धनका नाश करेगा। इसलिये धनके साथ बुद्धि चाहिये। कितनी सावधानीकी सूचना है देखिये।

७१ बुध्न्या वसूनि ।

' बुनियादी धन है ' क्योंकि प्रत्येक कर्ममें प्रथम धन चाहिये। धनके विना कोई व्यवहार हो ही नहीं सकता। सब कर्मोंका इस तरह आधार धन है।

९१ राये पुरंधिः

' धनके लिये विशाल बुद्धि चाहिये। ' पुरंधीका अर्थ विशाल बुद्धि ऐसा भी है और (पुरं धारयते सा) नगरके संरक्षणके लिये जो उपयोगी होती है वह धारणावती बुद्धि पुरंधि कहलाती है। यह जनताका संरक्षण करनेवाली विशाल बुद्धि धनके साथ चाहिये।

२८५ तरणिः पुरंध्या युजा वाजं सिषासति ।

'(तरणिः) त्वरासे कार्य करनेवाला, निर्दोष कार्य करनेवाला, (पुरंध्या युजा) विशाल बुद्धिसे युक्त होकर, धन बल तथा अन्न प्राप्त करता है। धारणावती बुद्धि धनके साथ होनेसे बडे लाभ हो सकते हैं।

६०७ पाञ्चजन्येन राया विश्वतः आयातं

' पञ्चजनोंका हित करनेवाले धनके साथ चारों ओरसे यहां आओ।' ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और निषाद इन पांचों मनुष्योंका हित करनेवाला धन राष्ट्रमें बढना चाहिये। जो धन राष्ट्रमें होगा वह इन पञ्चजनोंके हितके कार्यमें लगाना चाहिये।

९१ रत्नधेयाय विश्वान् देवान् यक्षि ।

रत्नोंका धारण करनेके लिये सब देवोंके उद्देश्यसे यज्ञ कर। यज्ञका उद्देश भी धन प्राप्ति है। यज्ञमें धन लगता है, धनके व्ययसे ही यज्ञ होता है, वह धन दशगुणित होकर यज्ञकर्ताके पास आ जाता है। इस तरह यज्ञ भी धनके उपार्जनके लिये होता है। यज्ञसे विश्व कल्याण होता है, उससे विश्वका सुख बढता है, आरोग्य बढता है, हृष्टि पुष्टी बढती है। उसके पश्चात् वे मनुष्य अनेक पुरुषार्थ करते हैं और धनका उपार्जन करते हैं।

तीन प्रकारका धन

१८८ पूर्व अपराय शिक्षन्,
कनीयस ज्यायान् देष्णं,
दूरं अमृतः पर्यासीत् ।

धन तीन प्रकारका होता है, (१) जो वरिष्ठ कनिष्ठको देता है, पितासे पुत्रको वंश परंपरया प्राप्त होता है, (२) कनिष्ठ श्रेष्ठको देता है, जिस तरह प्रजा राजाको कर के रूपसे देती है, (३) तीसरा धन वह है कि दूर देशमें जाकर वहां जीवित रहकर, व्यवसाय करके जो प्राप्त किया जाता है, और इस तरह इकठ्ठा होता है।

२६८ रायस्कामः पुत्रः पितरं ।

' धनकी कामना करनेवाला पिताके पास धन मांगता है।' और पिता पुत्रको धन देता है। यह आनुवंशिक धन है। इसपर पुत्रका अधिकार जन्मसे है। परंतु जब धनवान पुत्रहीन होकर मर जाता है, तब उसका धन राजा, अथवा शासन संस्था अपने पास ले लेती है। क्योंकि अन्तिम धनपर अधिकार सब प्रजाजनोंका है। (६०७ **पाञ्चजन्येन राया**) पञ्चजनोंका धन है। पञ्चजनोंके हितके लिये सब धन है अतः पुत्रहीनका धन शासक लेता है और उसका उपयोग पञ्चजनोंके हित करनेके कार्योंमें करता है। धन किसी भी व्यक्तिका नहीं है, क्योंकि व्यक्ति मरती है, व्यक्ति स्थायी नहीं है। व्यक्तियोंका संघ, समाज स्थायी है। इसलिये समाजका-पञ्चजनोंके संघका धन है। इसलिये पुत्रहीनका धन राजा लेता है। इतना ही नहीं परंतु प्रजासे कर लेकर राजा अपना कोश भर देता है। वह राजाका अधिकार इसलिये माना गया है कि धन पञ्चजनोंका है। राजा पञ्चजनोंके पालन कार्यमें वह लगाता है। राजा कर लेनेका अधिकारी इसलिये है।

राजा प्राप्त धनका व्यय प्रजापालनके कार्योंमें ठीक तरह करता है वा नहीं, यह सभा, समिति आदि पञ्चजनोंकी सभाएं देखें और राजाको योग्य रीतिसे व्यय करनेके लिये उसे बाधित करें।

१९१ वस्वी शक्तिः स्वस्ति

' धनकी शक्ति बडी है ' यह जानना चाहिये और इस धन शक्तिको अपने प्रभुत्वमें रखना चाहिये। यदि वह धनशक्ति हमारे सिरपर बैठ जाय, तो वही शक्ति हमारा हित करनेके स्थानपर हमारा ही घात करेगी। इसलिये जिसके पास धन आता है वह अत्यंत दक्ष रहे, सावध रहे। धनका दास या गुलाम न बने परंतु धनका स्वामी बनकर रहे।

धनवान्

२३ यं सूरिः अर्थी पृच्छमानः एति स मर्तः रेवान्- ज्ञानी और धनकी इच्छा करनेवाला जिसके विषयमें पृच्छा करता है वह मनुष्य धनवान् है।

१३३।१ मघवानः यन्तारः— धनवान् दाता हों, संयम रखें।

१३३।३ मघवानः जनानां गवां ऊर्वान् दयन्त— धनी लोग लोगोंको गौओंके झुंडोंका प्रदान करें।

विद्वान ज्ञानी धनकी इच्छा करता हुआ जिसके पास जाता है तथा जिसको आदरसे पूच्छता है उसको धनी कहते हैं। धनीकी यह व्याख्या है। केवल धन पास होनेसे धनी नहीं कहलाता, परंतु जो धनका दान ज्ञानीके ज्ञान प्रसारके कार्यके लिये करता है, अत ज्ञानी जिसके विषयमें पूच्छते रहते हैं,

आदरसे पूछते हैं वह सच्चा धनी है। धनी संयमी हो, अपने इंद्रियोंका संयम करे, अपने भोगोंका संयम करे। और (जनाना) लोगोंकी भालाईके लिये गौवोंके झुण्ड तथा अन्यान्य प्रकारके धन देता रहे।

२५१ सूरिभ्यः उपमं वरूथं यच्छ।

'ज्ञानियोंको उपमा देने योग्य श्रेष्ठ धन दो।' क्योंकि वे ही सत्पात्र और धनका दान लेनेके लिये योग्य अधिकारी हैं। धनकी शक्ति बडी होनेसे उसका प्रत्येक मानव अच्छी तरह उपयोग नहीं कर सकता। इसलिये अज्ञानीके हाथमें गयी धन-शक्ति अच्छा कार्य करनेकी अपेक्षा बुरा घातक परिणाम ही करेगी। इसलिये कहा है कि (सूरिभ्यः वरूथं यच्छ) ज्ञानियोंको ही श्रेष्ठ धन दो। अज्ञानियोंको धन न दो। धनका विशेष दान करना हो तो उस समय इस तरह विचार करना चाहिये कि इस धनको मैं किस विद्वानको दूं कि जो इसका उत्तम उपयोग करके जनताका भला अधिकसे अधिक कर सकेगा। धनका उपयोग जनहित करना है। वह जिसके पास धन जानेसे होगा वह उस धन लेनेका अधिकारी है।

शस्त्र-तलवार

४५ रोचमानः सुक्रतुः, पूता स्वधितिः इव, निः गात्— स्वच्छ खड्गके समान चमकनेवाला अग्नि प्रकाशित हुआ है। यहां तलवारकी उपमा अग्निको दी है। अग्नि जैसा लकडियोंसे बाहर आकर चमकता है, वैसा खड्ग म्यानसे बाहर आकर चमकता है।

'पूता स्वधितिः' तलवार अथवा खड्ग स्वच्छ रहना चाहिये। शस्त्र जितना स्वच्छ रहेगा उतना वह अच्छा कार्य कर सकेगा। प्रत्येक शस्त्रके विषयमें यही नियम है। धनुष्य बाण हुआ, तो धनुष्य, उसकी डोरी तथा बाण स्वच्छ, मल रहित होने चाहिये। परशु, खड्ग, तलवार, स्फ्य, कृपाण, कुल्हाडा, भल्ल, भाला आदि सभी शस्त्र तेज चाहिये, साफ किये होने चाहिये। ये शस्त्र स्वच्छ न रहे तो कार्य नहीं कर सकेंगे।

अग्निकी ज्वालाके समान सब शस्त्र स्वच्छ रहने चाहिये ऐसा इस मंत्रमें कहा है। जिसकी धारा सुतीक्ष्ण होती है वही शस्त्र युद्धमें काम दे सकता है। सैनिकोंके शस्त्र सुतीक्ष्ण रखने रखवानेका कर्तव्य पुरोहितका है। मंत्र ९०५-९०६ देखो। इनमें पुरोहित कहता है कि जिनका मैं पुरोहित हूं उनके सैनिकोंके शस्त्रास्त्र मैं अत्यंत तेज रखता हूं। जिनसे शत्रु परास्त होंगे और अपना विजय होगा। शत्रुके शस्त्रसे अपने शस्त्र अधिक तीक्ष्ण होने चाहिये, तब अपना विजय होगा।

आर्य और दस्यु

६१ त्वं आर्याय उरु, ज्योतिः जनयन्, दस्यून् ओकसः आजः— तू आर्योंके लिये विशेष प्रकाश करता है और दस्युओंको घरसे उखाड देता है।

६८ अक्रतून् ग्रथिनः मृध्रवाचः अश्रद्धान् अवृधान् अयज्ञान् अयज्यून् दस्यून् पणीन् अपरान् चकार— सत्कर्म न करनेवाले, कुटिल, असत्यभाषी, श्रद्धाहीन, हीन अवस्थामें पहुंचे, यज्ञ न करनेवाले, दूसरोंको भी यज्ञसे हटानेवाले, कुटिल रीतिसे व्यापार व्यवहार करनेवाले दस्यु-लुटेरोंको वह प्रभु अधिक हीन दीन बनाता है। योग्य राजा दुष्टोंको हीन अवस्थातक पहुंचा देता है।

आर्योंके लिये प्रकाशका मार्ग है और चोर, डाकुओंके लिये इसके विपरीत अवस्था प्राप्त होती है। (अक्रतु) सत्कर्म न करनेवाले, (ग्रथी) कुटिल, जटिल, (मृध्रवाक्) असत्यभाषी, (अश्रद्ध) श्रद्धारहित, (अवृध) हीन अवस्थामें रहनेवाले, (अयज्ञ) यज्ञ स्वयं न करनेवाले, (अयज्यु) यज्ञ करनेवालोंको यज्ञ कर्मसे रोकनेवाले (पणि) कुटिल रीतिसे व्यापार व्यवहार करनेवाले, (दस्यु) चोर डाकू लुटेरे जो होंगे उनको (अपरान् चकार) नीच अवस्थामें पहुंचा दो। ऐसे काम वे न करें ऐसा करो। ये दस्यु हैं।

काली प्रजा

५९ हे वैश्वानर! त्वत् भिया असिक्नीः विशः भोजनानि जहतीः असमना आयन्, यत् पूरवे शोशुचानः, पुरः दरयन् अदीदेः— हे सबके नेता वीर! तुम्हारे भयसे काली प्रजा अपने भोजनोंको छोडकर, व्यग्र चित्तसे इधर उधर भटकती है, जिस समय तुमने नागरिक जनोंके हितके लिये, शत्रुके नगरोंको तोड दिये। यहां काली प्रजा शत्रु है और पुरु प्रजा दूसरी है एसा प्रतीत होता है।

'अ-सिक्नीः विशः' अश्वेत प्रजाजन, काले वर्णके लोग ये यहां पराजित हुए, वे अपने भोजन छोडकर इधर उधर भागने लगे ऐसा वर्णन है। दूसरी प्रजा (पूरवे, पुरु) है। पुरवासी लोगोंको पुरु कहते हैं। नागरिक लोग ये पुरु है

जिनका नाम ' पौर ' भी है। (अ सिक्नी विशः) काली प्रजाके भी नगर थे, वे नगर, वे पुरियाँ (पुरः दरयन् अर्दीदेः) तोडी गयीं, उनका नाश किया गया। और वे अपने तैयार हुए भोजन वहीं फेंककर इधर उधर भागने लगे। यहां किसी युद्ध प्रसंगका काल्पनिक अथवा सत्य वर्णन है। जिस युद्धमें काली प्रजाका पूर्ण पराभव हुआ और आर्योंका विजय हुआ है। आर्य वीरोंने काली प्रजाके नगर तोडे, उनको भगाया, उन नगरोंपर कब्जा किया।

कीलोंसे सुरक्षा

४३ आयसीभिः शतं पूर्भिः अमितैः महोभिः न पाहि— सेकडों लोह दुर्गोंसे और अपरिमित सामर्थ्योंसे हम सब नागरिकोंको सुरक्षित करो। '**आयसी पूः**' का अर्थ कीला, लोहेका बना अथवा पत्थरोंकी दीवारोंसे बना दुर्ग। 'पूः' का अर्थ ' नगरी ' है जिसमें नागरिकोंके संपूर्ण सुखसाधन भरपूर रहते हैं। ऐसी नगरियोंका संरक्षण दुर्गोंसे करना चाहिये।

१२५ अनाधृष्ट न नृपीतये शतभुजि मही आयसी पूः भव— शत्रुओंसे आक्रान्त न होकर हमारे मनुष्योंके संरक्षणके लिये सेकडों साधनोंसे सुरक्षित बडी विस्तृत लोह प्राकारसे सुरक्षित कीलोंवाली नगरी हो।

१८९ अद्रिवः— कीलोंमें सुरक्षित रहनेवाला। पर्वतपरके कीले जिसका संरक्षण करते हैं।

२२४।१ दुर्गे मर्तासः न अमन्ति, तान् अमित्रान् निश्नथिहि— कीलोंमे रहकर जो हमारा नाश करते हैं उन शत्रुओंका नाश कर।

७५५ आयसी पूः— लोहेके कीलेकी नगरी।

इन मंत्रोंमें कीलोंका वर्णन है। नगरका संरक्षण करनेके लिये कीलोंकी रचना करनी चाहिये। ऐसे सुरक्षित नगर हों। तथा राष्ट्रके संरक्षणके लिये भी कीलोंकी उत्तम व्यवस्था करना योग्य है। ऐसे सुरक्षित नगर हों, जो शत्रुके आक्रमणसे भयसे विमुक्त हों।

दान

१६९ विभक्ता शीर्ष्णे शीर्ष्णे विबभाज— दान देनेवाला श्रेष्ठसे श्रेष्ठ विद्वानको दान देवे।

१७१।३ सुष्वितराय वेदः प्रयन्ता— उत्तम यज्ञकर्ताको धन दान करो।

पापमय दान

१७७।२ परादै अघाय मा भूम— (पर आदा) दूसरोंसे लेकर जीवन निर्वाह करनेका पाप करनेवाले हम न हों। हमें ऐसी हीन स्थिति कभी प्राप्त न हो।

धनदान

१८०।२ मघानि ददत असश्चंवः— धनका दान करते हुए वे हमारी ओर आ रहे है।

१८३।४ दाशुषे मुहुः वसु दाता अभूत्— दाताको बारंबार धनका दान करता है।

१८९।१ प्रियः सखा ते ददाशत्— प्रियमित्र तुझे दान देता है।

२१४।३ त्वं धीभिः वाजान् विदयसे— तू बुद्धियोंके साथ अन्नोंका दान देता है।

२१५ देवत्रा एकः मर्तान् दयसे— देवोंमें एक ही देव मानवों पर दया करता है। धनका दान देनेकी दया करता है। धन देता है।

२१७ वसूनि ददः— धनका दान कर।

२२६ त्वावतः अवितुः रातौ— तेरे अनुकूल रहकर संरक्षण करनेवालेके दान हमें मिले।

२४४ मघानि ददः— धनोंका प्रदान कर।

२५१ सुदानवे सत्यराधसे उक्थं शंस— उत्तम दानी और सत्यके लिये धन देनेवालेकी प्रशंसा कर।

२७५ सुदासः रथं न किः परिआस— उत्तम दाताके रथको कोई घेर नहीं सकता।

५११ सुदासे उरुं लोकं— उत्तम दाताके लिये विस्तृत क्षेत्र मिले।

६४९।३ सनये धियं धाः— दानकी बुद्धिका धारण कर।

दान किसको देना चाहिये ? (शीर्ष्णे शीर्ष्णे) श्रेष्ठ विद्वानको ही दान देना चाहिये। शिर स्थानमें विराजनेवाले ज्ञानीको दान देना चाहिये। दान (अघाय मा) पाप बढानेके लिये दान न हो। जो पाप करता है उसको दान नहीं देना चाहिये।

२१७ वसूनि ददः।

२४४ मघानि दद।

धनोंका दान करो। यज्ञके लिये, शुभ कर्म करनेवालोंके लिये

धनका दान करो। सदा (सनये धियं धाः) दान देनेकी बुद्धि अपने अन्दर रखो। क्योंकि सब धन समाजका है, इसलिये जितना उस धनका उपयोग समाज हितके लिये हो सकेगा, उतना उसका अधिक सार्थक होगा।

३१४ अ-यातु, ऋतेन साधन्, देवान् ह्वयामि— हिंसारहित, सत्यसे साधन करके, देवोंको बुलाता हूं।

३७२ ऋतं यजाति— ऋत सत्यका यजन करता है।

५११।१ य वेदिं अवयजेत, स रिपः चित्— जो वेदीका अपमान करता है, वह दुर्गतिको प्राप्त होता है।

६८५ देवहूतये स्पर्धन्ते— यज्ञके अर्थ स्पर्धा करते है। यज्ञका स्वरूप देवपूजा-संगतिकरण-दान है। विबुधोंका सत्कार, संघटन करना और निर्बलोंकी सहायता, ये त्रिविध कर्म यज्ञमें होते है। ' अ-यातु ' दूसरोंको यातना न देना, इतना ही नहीं परंतु दूसरोंको सहायता पहुंचाना यह यज्ञका उद्देश है। ' अ-ध्वर ' अकुटिलता, हिंसा न करना, टेढी चालसे न जाना आदि यज्ञमें होते हैं। ' ऋत और सत्य ' ये यज्ञके अंग हैं। सरलता और सत्यनिष्ठा ये यज्ञके मुख्य अंग है। " देवहूति " देवोंको बुलानेमें स्पर्धा यज्ञमे होती है। देव आकर यहां बैठें इतनी पवित्रता यज्ञ स्थानमें होनी चाहिये। ये यज्ञके सामान्य लक्षण है। शेष देखा जाय तो अनेक प्रकारके यज्ञ हैं। उनका संपूर्ण वर्णन विशेष स्थानपर किया जायगा। यहां इतने लक्षणोंका उल्लेख ही पर्याप्त है।

सुगंधी हवन

१८ नः सुरभीणि हव्या प्रतिव्यन्तु— हमारे सुगंधित हविर्द्रव्य प्रत्येक देवताको प्रिय हों।

सुगंधित हवनसे प्रसन्नता होती है, यह अनुभव हरएकको है। सुगंधी हवनसे प्रसन्नचित्त होता है, दुर्गंधियुक्त पदार्थोंका हवन करनेसे मन अप्रसन्न होता है, मिरचके हवनसे खांसी आती है ये अनुभव सबको मालूम है। हवनमें ये ही विचार मुख्य स्थान रखते हैं।

प्रायः जो औषधिया और वनस्पतियाँ जिस रोगपर प्रयुक्त होती हैं उनका हवन उस रोगका प्रतिकार करता है। कई हवन ऐसे भी हैं कि जो शत्रुके राज्यमें किये जाते हैं जिनसे अनेक रोग वहा बढ जाते हैं। इस विषयका वर्णन आर्य चाणक्यके अर्थ शास्त्रमें किया है। जैसे रोग बढानेवाले हवन हैं वैसे ही रोगोंको दूर करनेवाले भी हवन हैं।

इस विषयमें प्रयोग करके देखना चाहिये और निश्चित कार्य-क्रम नियत करना चाहिये। हवनसे पदार्थोंके परमाणु शरीरमें श्वसन नलिकासे जाते हैं, वहांकी श्लेष्मल त्वचापर वे चिपकते हैं और शरीरमें जाकर इष्टानिष्ट परिणाम करते हैं।

प्रशंसनीय कर्म

१८२।१ नर्यः यत् करिष्यन् अपः चक्रिः— मानवोंका हित करनेवाला जो कर्म करना चाहता है, वह कर छोडता है।

१९५।१ नर्याणि विश्वा अपांसि विद्वान्— मानवोंका हित करनेके सब कर्मोंको जो जानता है वह विद्वान् कहलाता है।

२११ यः विश्वानि शवसा ततान— जो सब कर्मोंको अपने बलसे फैलाता है।

३८२ राजानः ऋतस्य नेतारः अपः धुः— राजा और राजपुरुष सत्यके प्रवर्तक होकर लोगोंके कर्मोंको आश्रय देते हैं।

४१० सूरः असै अपस्यां अनु अदात्— सूर्य (ज्ञानी) मनुष्यको कर्म करनेकी प्रेरक बुद्धि देता है।

५१० तुरासः देवहेडनं कर्म मा— शीघ्रतासे देवोंका निरादर करनेवाला कर्म कोई न करे।

५१५।३ सूर्यः विश्वा भुवना अभिचष्टे— सूर्य सब भुवनोंका निरीक्षण करता है।

५१५।४ सः मर्त्येषु मन्युं आ चिकेत— वह सूर्य मर्त्योंके मनमें जो भाव है उसे जानता है।

६४९।१ देवं देवं राधसे चोदयन्ती— प्रत्येक विबुधको सत्कर्म करनेकी प्रेरणा देती है।

सूनृता ईरयन्ती—सत्यभाषणकी प्रेरणा करती है।

५९९।४ कर्तृभिः कृत्वा कृतः सुकृतः भूत्— पुरुषार्थ प्रयत्न करनेवाला सत्कर्म करता है।

' नर्यः ' वह है कि जो सब मानवोंके हित करनेके लिये प्रशस्त कर्मोंको करता है। ' पाञ्चजन्य ' पदका भी यही अर्थ है। पञ्चजनोंका हित करनेवाला पाञ्चजन्य कहलाता है। सार्वजनिक हितका कर्म करनेवाला यह इसका अर्थ आजकी भाषामें है।

१९५ नर्याणि विश्वा अपांसि विद्वान्

सब मानवोंके हित करनेके लिये जो प्रशस्त कर्म करने होते हैं, उन कर्मोंका यथावत् जाननेवाला ' विद्वान् ' कहलाता है। ये ' ऋतस्य नेतारः ' सरलताके मार्गके संचालक होते हैं।

५१० तुरासः देवहेडनं मा- त्वरासे कर्म करते हुए देवोंके निरादर होने योग्य कर्म न कर। प्रत्युत देवोंका आदर होने योग्य ही कर्म कर। इसमें प्रमाद न हो।

' सुकृतः भूः ' सुकर्म कर, सत्कर्म कर, प्रशंसित कर्मोंको कर। इसमें प्रमाद न हो। सदा अपने हाथसे प्रशंसित ही शुभ कर्म होते रहें। कभी हानिकारक कर्म न हों।

हिंसारहित कर्म

९८।१ अध्वरस्य महान् प्रकेतः असि— हिंसा कुटिलता विरहित कर्मोंका महान् सूचक तू बन।

१३८।१ देवाः प्रचेतसं अध्वरस्य होतारं अकृण्वत- देवोंने विशेष ज्ञानी तेजस्वी वीरको कुटिलतारहित प्रशस्त कर्म करनेके लिये निर्माण किया है।

६३१।४ देवानां व्रतानि न मिनन्ते, अमर्धन्तः— देवोंके कर्मोंको कोई बिगाडते नहीं, हिंसित नहीं करते। देवोंके प्रशस्त कर्म चलते ही रहते हैं।

' अ-ध्वर ' पदका अर्थ ' हिंसारहित, कुटिलतारहित, जिसमें टेढापन नहीं ऐसा कर्म। ' (ध्वरा हिंसा तदभावो यत्र स अध्वरः) जिसमें टेढापन नहीं, हिंसा नहीं, छल, कपट, घातपात नहीं ऐसा उत्तम प्रशंसा योग्य कर्म। यज्ञका यह महत्त्वपूर्ण नाम है। यज्ञके अर्थ पूर्व स्थलमें ' सत्कार-संघटन-दान ' दिये हैं, उनके साथ ' अहिंसा-सरलता-अकपट ' का समावेश करना योग्य है। इससे यज्ञका स्वरूप विशेष रूपमें प्रकाशित होगा।

विस्तृत कार्यक्षेत्र

३५४।१ मह्यीं अरमतिं प्र कृणुध्वं— पृथ्वीपर कार्यक्षेत्र अपने लिये विशाल बनाओ।

' अरमति ' पद यहां महत्त्वपूर्ण है। **' अ-रमति '** जहां रममाण होना ही केवल नहीं है, भोग भोगना ही केवल नहीं, जहां केवल मजा उडाना ही नहीं वह ' अ-रमति ' है। भोगोंपर आसक्ति न रखकर कर्तव्यपर बल देना यह इसका भाव है। दूसरा अर्थ इसका ऐसा है— **' अर-मति '** प्रगति करनेमें जो बुद्धि होती है। (ऋच्छति प्रगच्छति इति अरं, तत्र मतिः) जो प्रगति करता है, अभ्युदय या उन्नति करता है उसका नाम ' अर ' है, ऐसे अभ्युदयके कर्मोंमें जो अपनी मतिको लगाता है वह अरमति है।

अपनी बुद्धिको अभ्युदय निश्रेयसके, परम कल्याणके कार्यमें लगाना चाहिये। मनुष्य हीन, तुच्छ, दीन कार्योंके लिये अपनी मतिको न लगावे, परंतु श्रेष्ठ प्रगति करनेवाले कार्योंमें ही लगावे। यह इसका तात्पर्य है।

सुख, शान्ति और कल्याण

२३२।३ अस्मे प्रिया भद्राणि सश्चत— हमें प्रिय कल्याण रूप सुख प्राप्त हों।

३३३ भगः पुरंधिः रायः सुयमस्य सत्यस्य शंसः नः शं अस्तु— ऐश्वर्य, बडी बुद्धि, धन और उत्तम संयमपूर्वक पालन किये सत्यकी प्रशंसा ये सब हमारा कल्याण करनेवाले हों।

३३५ सुकृतां सुकृतानि नः शं सन्तु— उत्तम कर्म करनेवालोंके सुकृत हमारा कल्याण करनेवाले हों।

३३६ जिष्णुः रजसस्पतिः नः शं अस्तु— विजयी लोकपति हमारा कल्याण करनेवाला हो।

३३८ सोमः ब्रह्म नः शं भवतु— सोम आदि वनस्पति और ज्ञान हमारा कल्याण करनेवाला हो।

३३९ सूर्यः पर्वताः सिन्धव आपः नः शं सन्तु- सूर्य, पर्वत, नदियां, जल हमारे लिये कल्याण करनेवाले हों।

३४१ त्रायमाणः सविता पर्जन्यः क्षेत्रस्य शंभुः पतिः नः प्रजाभ्यः शं भवन्तु— संरक्षक सूर्य, पर्जन्य और देशका हितकर्ता राजा हमारी प्रजाओंके लिये सुखकारी हो।

३४१ सरस्वती धीभिः नः शं अस्तु— विद्यादेवी बुद्धियों और कर्म शक्तियोंके साथ हमारा कल्याण करें।

३४३ सत्यस्य पतयः, अर्वन्तः गावः, सुकृतः सुहस्ताः ऋभवः पितरः नः शं भवन्तु— सत्यका पालन करनेवाले, घोडे, गौवें, सुकर्म करनेवाले, उत्तम हस्त-कौशल्यका कार्य करनेवाले शिल्पी तथा हमारे रक्षक हमें सुखदायी हों।

५१०।१ गोपावत् भद्रं शर्म सुदासे यच्छन्ति— जिसमें संरक्षण शक्ति है, कल्याण और सुख है, वह सुख उत्तम दाताको देवता देते हैं।

६५९ विशे जनाय अध्वराय महि शर्म यच्छतं- प्रजाजन अहिंसक कर्म करें इसलिये उनको सुख दो।

६९६ नः योगे क्षेमे शं अस्तु— हमारा योगक्षेममें कल्याण हो।

मनुष्यको सुख चाहिये, शान्ति चाहिये और परम कल्याण चाहिये। 'प्रियाणि भद्राणि' हमें कल्याण चाहिये, पर वह प्रिय भी होना चाहिये। हितकारक वस्तु तो हो पर वह प्रिय भी होनी चाहिये। (भग.) ऐश्वर्य भाग्य, (पुरं धिः) विशाल बुद्धि, सार्वजनिक हितकी बुद्धि, (राय.) धन, संपत्ति, (सु यम) उत्तम संयम, (सत्यं) सत्य व्यवहार, सरल व्यवहार, (शंसः) प्रशंसा, यश, कीर्ति, (सुकृत) उत्तम कर्म, पुण्य-कर्म (ब्रह्म) ज्ञान, (सरस्वती) विद्यादेवी यह सब हमारा सच्चा कल्याण करनेवाला हो। कल्याणका भास इन साधनोंसे न हो, परंतु सच्चा कल्याण हो यह भाव यहां है।

युद्ध

४० ते प्रसितिः सृष्टा सेना इव एति— अग्निकी ज्वाला युद्ध करनेवाली सेनाके समान हमला करती है। जैसी अग्निकी ज्वालाएं लकडियोंपर हमला करके उनका नाश करती हैं, उस तरह वीरकी सेनाएं शत्रुसेनाका नाश करें।

१७९ तन्वा शुश्रूषमाणः समर्ये आवः— शरीरसे शुश्रूषा करनेवाला युद्धमें वीरोंका संरक्षण करता है। युद्धमें शुश्रूषा करनेवाले भी रहने चाहिये।

१२३।१ समन्यवः सेनाः समरन्त— उत्साही सेना ही युद्ध करती है।

१३४।२ नेमधिता नरः इन्द्रं हवन्ते— युद्धमें जाने-वाले वीर इन्द्रको अपने सहाय्यार्थ बुलाते हैं।

२५१।२ समत्सु केतं उपमं दधः— युद्धोंमें ज्ञान उपमा देने योग्य धारण करो, युद्ध संबंधका अच्छा ज्ञान धारण करो।

२८२ ये आजयः ईं भवन्ति, अयं विश्वः पार्थिवः अवस्युः भिक्षते— जो युद्ध यहां होते हैं, उनमें ये सब पार्थिव वीर अपनी सुरक्षाके लिये सहायता चाहते हैं।

२९० महाधने सखीनां अविता वृधः भव— युद्धमें मित्रोंकी सुरक्षा करनेवाला और वृद्धि करनेवाला हो।

२९७।१ तृष्णजः वृतासः नाधितासः दाशराज्ञे उदर्दीधयुः— तृषित, शत्रुसे घेरे हुए उन्नति चाहने-वाले वीरोंने दाशराज्ञ युद्धमें अपने उद्धारके लिये बहुत यत्न किया।

३११ समत्सु त्मना वीरं हिनोत— युद्धोंमें स्वयं स्फूर्तिसे जानेके लिये वीरोंको प्रेरणा करो।

३३२ वाजसातौ नः शं योः— स्पर्धामें हमारा कल्याण हो तथा दुःख भी दूर हो।

३५४।४ सातौ पुरंधिं रातिषाचं वाजं प्र कृणुध्वं- युद्धके समय नगरका संरक्षण करनेवाले बलवान वीरकी शक्तिको बहुत बढाओ।

६६१।१ युत्सु पृतनासु वह्नयः युवां हवन्ते— युद्धोंमें अग्निसमान तेजस्वी वीर तुम्हें बुलाते हैं।

६६७।१ भरेभरे पुरोयोधा भवत— युद्धमें आगे रहकर लडो।

६६७।३ उभये नरः स्पृधि— दोनों नेता स्पर्धामें हैं।

६७०।१ कृतध्वजः नरः समयन्त— ध्वज उठाकर वीर युद्ध करते हैं।

६७०।२ आजौ किंचन प्रियं न भवति— युद्धमें कुछ भी भला नहीं होता है।

६७०।३ स्वर्दृशः भुवना यत्र भयन्ते— आत्मज्ञानी पुरुष युद्धसे डरते हैं।

६७१।१ भूम्याः अन्ताः ध्वसिराः सं अदृक्षत— भूमिके अन्त भाग उध्वस्त होते हैं। युद्धका परिणाम भयंकर होता है।

६७१।३ जनानां अरातयः उपतस्थुः— जनताके शत्रु युद्धमें इकट्ठे होते हैं।

६८१।१ विदथेषु नः यज्ञं चारुं कृतं— युद्धोंमें भी हमारा यज्ञ सुंदर रीतिसे होजाय।

६८५।२ दिद्यवः ध्वजेषु पतन्ति— युद्धके समय शस्त्र ध्वजोंपर गिरते हैं।

७८०।१ त्वया सौश्रवसं आजिं जयेम— यश देने-वाले संग्राममें विजय पावेंगे।

७८०।२ महतः मान्यमानान् योधयाः—बडे घमंडी शत्रुओंसे युद्ध कर।

७८०।३ शाशदानान् बाहुभिः साक्षाम— हिंसक शत्रुका अपने बाहुबलसे पराभव करेंगे ।

७८०।४ यत् नृभिः वृतः अभियुध्वाः— वीरोंसे घेरा हुआ शूर पुरुष शत्रुसे लडता है ।

७८१ अदेवीः मायाः असहिष्ट— राक्षसी कपटोंका पराभव कर ।

युद्धकी नीति ।

(६७० आजौ किंच प्रियं न भवति) युद्धसे कुछ भी अच्छा नहीं होता है, युद्धके परिणाम बहुत बुरे होते हैं। धर्मकी मर्यादा टूट जाती है, तरुण लोग नष्ट होते हैं, तरुण न रहनेसे स्त्रिया व्यभिचार करने लगती हैं । संतानें बिगडती हैं। धान्य कम पकता है। इस तरह सर्वत्र अव्यवस्था होती है । इसलिये जहांतक हो सके वहांतक युद्धको टालना चाहिये और यदि कुछ भी दूसरा उपाय न रहा तो ही युद्ध करना चाहिये ।

(६७० स्वर्दृशः भुवना भयन्ते) ज्ञानी लोग युद्धसे भयभीत होते हैं, क्योंकि वे युद्धके भयानक परिणामको देखते हैं । इसलिये युद्धसे ऐसे घोर परिणाम होंगे ऐसा वे ज्ञानी पहिलेसे जानते हैं, इस कारण युद्धसे वे डरते रहते है । (भूम्याः अन्ताः ध्वसिराः सं अदृक्षत) भूमिके अन्तभाग भी विनष्ट हो रहे हैं ऐसा युद्धके समय दीखता है । घनघोर युद्ध होने लगा तो भूमि धूलीसे विनष्ट हो रही है ऐसी दीखने लगती है। युद्ध क्या है वहां तो (६७२ जनानां अरातयः उपतस्थुः) जनताके शत्रु ही इकठ्ठे होते हैं । यदि वहां जनताके मित्र इकठ्ठे हो जांयगे, तो उनमें युद्ध ही नहीं होगा। वे मित्र बनकर जनताके कल्याणका उपाय सोचेंगे। पर युद्धके पूर्व जनताके शत्रुही इकठ्ठे होते हैं, इसलिये युद्ध खडा हो जाता है और उसमें विध्वंस ही विध्वंस हो जाता है ।

इस तरह ऋषियोंकी इच्छा युद्ध करने करवानेकी नहीं होती है, परंतु किसी एक पक्षकी दुष्टताके कारण युद्ध छिड जाता है । वैसा हुआ तो पहलेसे ही अपने पक्षकी तैयारी उत्तम रखनी चाहिये ।

शुश्रूषा पथक

(१७२ तन्वा शुश्रूषमाणाः समर्ये आवः) अपने शरीरसे शुश्रूषा करनेवाले युद्धमें बडा संरक्षणका कार्य करते हैं। घायल हुए वीरोंकी शुश्रूषा करनी चाहिये । यह (तन्वा शुश्रूषमाणाः) शरीरसे शुश्रूषा करनेका कार्य है । ' शुश्रूषमाण ' पदका अर्थ ' सुननेवाला, एकाग्रचित्तसे सुननेवाला ' ऐसा है । ' श्रु ' धातु ' सुननेके अर्थवाला ' है । परंतु जो ध्यानपूर्वक सुनता है वही ध्यानपूर्वक सेवा शुश्रूषा करता है । इस कारण इसी पदका अर्थ ' सेवा, सुश्रूषा करनेवाला ' ऐसा होता है । इस १७२ वें मंत्रमें ' इन्द्रने कुत्सकी शुश्रूषा की ' ऐसा भाव है । युद्धमें कुत्स अस्वस्थ हुआ था, जिसकी सेवा, शुश्रूषा इन्द्रके प्रबंधसे हुई, जिससे कुत्सका संरक्षण हुआ । यहा युद्धमें रुग्णों की सेवा करनेकाही भाव है ।

उत्साही सेना लडती है

(२२३ समन्यव सेनाः समरन्त) उत्साहवाली सेना ही लडती हैं । जिनमें लडनेका उत्साह नहीं, शक्ति नहीं, वे क्या लडेंगे ? जहां (२८२ आजयः भवन्ति, विश्व पार्थिवः अवस्युः भिक्षते) जहा युद्ध होते हैं वहा सब योद्धा अपनी सुरक्षा चाहते हैं । ' महाधन ' पदका अर्थ ' युद्ध ' है, क्योंकि युद्धसे बडा धन प्राप्त होता है, अर्थात् युद्धमें विजय होनेसे बडा धन मिलता है, शत्रुके नगर लूटकर धन प्राप्त किया जाता है । इसलिये युद्धका नाम ' महाधन ' है । (२९० महाधने सखीनां अविता भव) युद्धमें मित्रोंका संरक्षण कर । युद्धके समय अपने साथियोंका संरक्षण करना योग्य है ।

(३१२ समत्सु त्मना वीरं हिनोत) युद्धोंमें स्वयंस्फूर्तिसे वीर जांय ऐसी उनको प्रेरणा होनी चाहिये। जबरदस्ती युद्ध भूमीपर जानेसे भीरु मनुष्य लड नहीं सकेगा और उसको संभालनेका कार्य दूसरोंको करना पडेगा । इसलिये वीर स्वयंस्फूर्तिसे ही युद्धमें जाय और वहा उत्तम वीरताके साथ लडे । (६६७ भरे भरे पुरोयोधा भवत) प्रत्येक युद्धमें अग्रभागमे रहकर युद्ध करो । पीछे पीछे रहना योग्य नहीं । (६७० कृतध्वजः नरः समयन्ते) ध्वजा फहरानेवाले वीर युद्ध करते है । अपने अपने ध्वज वीर लें और उस ध्वजका सन्मान करते हुए शत्रुसे लडें । (६८९ दिद्यवः ध्वजेषु पतन्ति) शत्रुके शस्त्र ध्वजोंपर गिरते हैं । ध्वजको देखकर शत्रु शस्त्र चलाते हैं । (७८० आजि जयेम) युद्धमें हम निःसंदेह जीतेंगे ऐसी धारणा लडनेवाले वीरकी चाहिये। ऐसा वीर युद्धमें जय प्राप्त करता है । (७८० मन्यमानान् योधयाः) घमंडी शत्रुओंके

साथ युद्ध करना और उनको पराजित करना चाहिये। (७८१ अदेवीः मायाः असहिष्ट) आसुरी कपटोंका पराभव करना चाहिये। राक्षस लोग जो कपटसे युद्ध करते हैं, उनका पराभव करना चाहिये। इस तरह वसिष्ठ मंत्रोंमें युद्धके विषयमे कहा है।

रथ

१९६।१ अक्षं अव्ययं— रथका अक्ष न टूटनेवाला हो।

३०७ सुतष्ट वाजी रथः— उत्तम बनाया उत्तम शक्तिशाली रथ हो।

३१० धूर्षु अश्वान् आदधात— धुराओंमें घोडोंको जोतो।

३५६ वाहिष्ठः अमृक्तः रथः— उत्तम वहन करनेवाला न टूटनेवाला रथ हो।

३९४ हरितः रोहितः वीरवाहाः युक्ष्व— हरिद्वर्णवाले घोडे वीरोंके रथोंको जोते जाय।

४०७ प्रथमः वाजी अर्वा दधिक्रावा प्रजानन् रथानां अग्रे भवति— सबमें मुख्य अरबी घोडा स्वयं जानता हुआ, रथके आगे स्वयं जाकर खडा रहता है।

४११ मघवान वाजाः ऋभुक्षण नरः! अर्वाचः नर्यं रथं आवर्तयन्तु— हे धनी बलवान् और कारीगरोंको आश्रय देनेवाले नेताओ! तुम्हारे मनुष्य-हितकारी रथको तुम्हारे घोडे हमारे पास ले आवें।

५३७ मनसा गर्ते तक्षत्— शिल्पी मन लगाकर रथको तैयार करता है।

५७५ मनोजवः रथ शतोतिः- मनके समान वेगवान रथ सेंकडो संरक्षक साधनोंसे युक्त हो।

५८२ हिरण्यय घृतवर्तनिः पविभिः रुचानः इषां वोळ्हा वाजिनीवान् नृपति वृषभि अश्वैः आ यातु- सुवर्णका बना, घीके मार्गसे जानेवाला, जगमगाता हुआ, अन्नोंको लानेवाला सेनावाले राजाके समान बलिष्ठ घोडोंसे खींचा जानेवाला रथ हमारे पास आजावे।

५९९ वृषणः सुष्वायवः वां रथं आवर्तयन्तु— बलवान शिक्षित घोडे आपके रथको यहां लावें। हमारे पास ले आवें।

५९९ ऋतयुग्भिः अश्वैः स्यूमगभस्ति वसुमन्तं आवहेथां— सरल जानेवाले घोडोंसे तेजस्वी धनवाले रथको इधर ले आइयें। हमारे पास धनसे भरा रथ आ जाय।

६०० रथः वसुमान् उस्रयामा— धनवाला रथ सबेरे जानेवाला है।

रथके विषयमें वसिष्ठ मंत्रोंमें इस तरहके निर्देश मिलते हैं। 'अ-व्यथ. अक्ष.' रथका अक्ष न टूटनेवाला हो यह आदेश कितना महत्त्वका है यह विचार करनेवाले पाठक जान सकते हैं। (सुतष्ट. रथः) उत्तम बनाया हुआ रथ हो। शिल्पीने रथ उत्तम प्रकारसे बनाया हो। जो न टूटनेवाला होगा और चालकके लिये भी अच्छा होगा। (धूर्षु अश्वान् आदधाति) धुरामें घोडे जोते जाय। बैलोका काम युद्धमे नहीं है। (मनोजवः रथः) मनके अनुसार चलाया जानेवाला रथ हो। ये रथके वर्णन देखने योग्य है।

घोडा

४१ अत्यं दोषा उषसि मर्जयन्त— घुडदौडके घोडेको दिन रात सेवा करके स्वच्छ रखते है। घोडेकी सेवा न हुई तो वह घोडा घुडदौडमें अच्छा कार्य नहीं कर सकता। इसलिये घोडेकी सेवा अवश्य होनी चाहिये।

१७६।४ वृषणा हरी रथे युनज्मि— बलवान (दो) घोडे रथमें मैं जोतता हूं।

२११।१ धुरि अत्यः अधायि— धुरामें चपल घोडो जोता है।

३५३ मन्द्रसानाः वाजिनः नः तोकं धियं च अवन्तु— आनंद देनेवाले घोडे अथवा बलवान् वीर हमारे बालबच्चोंका तथा कर्मोंका संरक्षण करें।

४०८ दधिक्राः ऋतस्य पंथां अनु पतवै नः पथ्यां आ अनक्तु— यह घोडा सत्य मार्गसे चलता है, वह हमारे मार्गकी शोभा बढावे।

५७० ते तरणयः धूर्षु वहन्ति— तुम्हारे त्वरासे चलनेवाले घोडे धुरामें रहकर ढोते हैं।

५९० शुन. पृष्ठः वाजी अश्वः— जिसके पीठपर बैठना सुखदायी है वह बलिष्ठ घोडा अच्छा है।

घोडेके विषयमें वसिष्ठ मंत्रोंमें ऐसे वर्णन आते हैं। सर्व साधारण घरोंमें रहनेवाला घोडा और घुडदौडमें दौडनेवाला

घोडा ऐसे दो घोडोंका पृथक् वर्णन किया है और अरबी घोडेका भी वर्णन पृथक् है। वसिष्ठ ऋषिके वर्णनमें इन तीनों घोडोंका वर्णन देखने योग्य है।

रोग दूर करो

७।३ अमीवां प्र चातयस्व— रोगोंको दूर करो। आममे, अपचित अन्नसे उत्पन्न होनेवाले रोगोंको दूर करो। उसका बीज शरीरमें न रहे ऐसा करो।

८५ अमीवचातनं रक्षोहा द्युमत् आपये शं भवाति— रोग दूर करने और रोग बीज हटानेवाला तेजस्वी औषध बांधवोंके लिये सुखदायी होता है।

३७० सनेमि अमीवाः अस्मत् युयवन्— पुराने रोग हमसे दूर हों।

४१४ जासु अनमीवः भव— प्रजाजनोंमें नीरोग हो। रोगी न बनो। रोग दूर करनेवाला बनो।

४१५।१ सहस्रं भिषजा— हजारों औषधियां रोग दूर करनेकी हैं।

४१५।३ तोकेषु तनयेषु मा रीरिषः— बालबच्चोंमें अपमृत्यु न हो।

४४१ नः स्वावेशः अनमीवः भव, नः द्विपदे चतुष्पदे शं भव— हमारा घर रोगरहित हो। हमारे द्विपाद और चतुष्पाद सुखी हों।

४४५ वास्तोष्पते! अमीवहा विश्वारूपाणि आविशन्— हे भूपते! रोग दूर करनेवाला हो, सब रूपोंकी सुंदरता प्राप्त कर।

५९८ अस्मत् अनिरां अमीवां युयुतं, नः दिवा नक्तं शासीथां— हमसे अन्नके अभावको तथा रोगको दूर करो और हमें दिन रात सुरक्षित रखो।

रोग दूर करके दीर्घजीवन प्राप्त करना यह इच्छा यहां स्पष्ट दीखती है। रोगका नाम ' अमीवा ' है। ' अमी-वा ' का अर्थ आमसे उत्पन्न होनेवाला, अपचित अन्न पेटमें सडता है, वह आम है। इस आमके कारण रोग होते हैं। रोग होनेका मुख्य कारण यह है। यदि अपचन न रहा तो रोग आपही आप दूर हो सकते हैं। नीरोग होनेके लिये ' अनमीवः भव ' कहा है। ' अमीव-चातन ' यह रोग दूर करनेकी चिकित्साका नाम है। ' रक्षो-हा ' इस पदमें ' रक्ष. (राक्षस) ' नाम रोग बीजोंका है। इनका नाश करनेवाले औषधका नाम ' रक्षो-हा ' है। ' सहस्र भिषजा ' सहस्रों औषध हैं जो रोगोंको दूर करते हैं और मनुष्यको नीरोग और दीर्घायु करते है। इसलिये मनुष्यको डरना नहीं चाहिये। आवश्यक होनेपर औषधि प्रयोग करके नीरोग होकर दीर्घजीवन तथा बल प्राप्त करना चाहिये।

उत्तम वीर

४।१ सुवीरास द्युमन्त. वरं— जो उत्तम वीर तेजस्वी होते हैं वे श्रेष्ठ होते हैं। उत्तम वीरोंका तेजस्वी होना श्रेष्ठताका द्योतक है।

४।१ सुजातासः नरः समासते— कुलीन नेता संघटित होते हैं, कुलीन नेता संघटित होकर कार्य करते हैं।

४।२ सुवीरासः प्र निः शोशुचन्त—उत्तम वीर विशेष तेजस्वी होते हैं। उत्तम वीर तेजस्वी, श्रेष्ठ, संघटना करनेवाले, तथा कुलीन होते हैं।

२४।४ सुवीरासः मदेम—हम उत्तम वीरोंसे युक्त होकर आनन्द प्राप्त करेंगे।

४१।२ नरः दोषा उषसि यविष्ठं मर्जयन्त— नेता लोग रात्रीमें तथा उषःकालमें बलवान् तरुणको शुद्ध करते हैं, पतित होने नहीं देते। जगाते है, तेजस्वी बनाते है।

४७ शुक्राय भानवे सुपूतं मतिं प्रभरध्वम्— बलवान् तेजस्वी वीरके लिये अत्यंत पवित्र स्तोत्र गाओ। बलवान् और तेजस्वी वीरकी प्रशंसा करो।

४८ सः तरुण. अग्निः गृत्सः मातुः अजनिष्ट—वह तरुण वीर अग्निके समान तेजस्वी तथा प्रशंसनीय मातासे उत्पन्न हुआ है।

४८।२ सः भूरि अन्ना सं अत्ति— वह वीर बहुत अन्न उत्तम रीतिसे भक्षण करता है जिससे वह बलवान् बनता है।

४९ अनीके संसदि मर्तासः इयेतं जगृभ्रे, सः आयवे दुरोकं शुशोच – सैनिकोंकी सभामें मनुष्य अत्यंत तेजस्वी वीरको प्रमुख स्थानमें रखते हैं, वहां वह मानवोंके हितके लिये अत्यंत प्रखरतासे चमकता है। तेजस्वी वीरको सेनापति बनाते हैं, वहां वह अपनी वीरतासे चमकता है।

६६ दारुं वन्दे — शत्रुके विदारण करनेवाले वीरको मैं प्रणाम करता हूं।

११८ द्युमन्तं सुवीरं निधीमहि— तेजस्वी सुवीरको हम यहां संरक्षणके लिये स्थापन करते है।

११९ त्वं अस्मयुः सुवीरः— तू हमारे साथ रहनेवाला उत्तम वीर है।

१६६।१ पराशरः शतयातु वसिष्ठः— दूरसे (पराशरः) शरसंधान करनेवाला और इस कारण सैंकडों यातना देनेवाले शत्रुओंका सामना करनेवाला वसिष्ठ ऋषि है। यह शूर वीर है।

१७१।१ एकः भीमः विश्वा· कृष्टीः प्रच्यावयति— अकेला प्रबल वीर सब शत्रुओंको अपने स्थानसे उखाड देता है।

१७१।२ अदाशुषः शश्वतः गयस्य च्यावयिता— अदाताके·शत्रुके·सुस्थिर घरोंको उखाडनेवाला वीर हो।

१८२।१ स्वधावान् उग्रः वीर्याय जज्ञे— अन्नवान् शूर वीर पराक्रम करनेके लिये उत्पन्न हुआ है।

१८४ युध्मः अनर्वा खजकृत् समद्वा शूरः जनुषा सत्राषाट् अषाळ्हः स्वोजाः पृतना वि आसे। अथ विश्वं शत्रूयन्तं जघान— वीर युद्धसे पीछे न हटनेवाला, युद्धविद्यामें कुशल युद्धमें जानेके लिये सिद्ध शूर जन्मस्वभावसे शत्रुका पराभव करनेवाला, स्वयं पराभूत न होनेवाला बलशाली योद्धा, शत्रुसेनाको अस्तव्यस्त करता है और सब शत्रुओंका नाश करता है।

१८५ हरिवान वज्रं नि मिमिक्षत्- घुडसवार शत्रुपर शस्त्र फेंकता है।

१८७।१ यः अस्य घोरं मनः आविवासत् स जनः नुचित् क्षेजले, न रेषत्— जो इस वीरके घोर मनको प्रसन्न करता है, वह मनुष्य अपने स्थानपर सुरक्षित रहता है, वह कभी क्षीण नहीं होता।

१८७।२ यः इन्द्रे दुवांसि दधते, सः ऋतपाः ऋतेजाः राये क्षयत्— जो इस वीरके काव्य गाता है वह सत्यपालक और सत्यके लिये जन्मा वीर धनके लिये निवास करता है। पर्याप्त धन प्राप्त करता है।

१९५।२ भीमः आयुधेभिः एषां विवेश— प्रचण्ड वीर अपने आयुधोंके साथ शत्रुसेनाओंमें घुमता है।

१९५।३ जर्हषाणः वज्रहस्तः महिना जघान-- प्रसन्नचित्तसे वज्र हाथमें धारण करके अपनी पूर्ण शक्तिसे शत्रुपर मारता है।

२१६।१ वज्रबाहुं वृषणं अर्चन्ति— वज्रके समान बाहुवाले बलवान् वीरकी पूजा करते हैं।

२१७।२ नृभिः आ प्रयाहि— नेताओंके साथ जाओ।

२२३ उग्रः— पुरुष उग्र वीर हो।

२२३।१ नर्यस्य महः बाह्वोः दियुत् ऊती पताति- मानवोंका हित करनेवाले बडे वीरके बाहुओंसे तेजस्वी शस्त्र उन मानवोंका रक्षण करनेके लिये शत्रुपर गिरता है।

२२३।३ विश्वद्र्यक् मनः मा विचारीत्-- चारों ओर जानेवाला वीरका मन इधर उधर न जाय। अपने संरक्षणके कार्यमें ही लगा रहे।

२४९।४ अस्य महे नृम्णाय भव-- इस राष्ट्रका महान् सामर्थ्य बढाओ।

२४९।५ अस्य महि क्षत्राय पौंस्याय भव-- इस राष्ट्रका बडा क्षात्रतेज और वीर्य पौरुष बढाओ।

२५०।१ शूराः तनुषु सूर्यस्य सातौ-- शूर वीर अपने शरीरोंमें सूर्यके दानको धारण करें। सूर्य प्रकाशसे अपने बलकी वृद्धि करे।

२५०।३ विश्वेषु जनेषु शूरः सेन्यः— सब मानवोंमें शूर ही सेनामें रखने योग्य है।

२५१।३ असु-रः अग्नि— बलवान् वीर अग्निके समान तेजस्वी होता है।

२५१।४ असु-रः सुभगाय अत्र निषीदत्— बलवान् वीर उत्तम ऐश्वर्यके लिये यहां निवास करता है। वह ऐश्वर्यका रक्षण करे।

२६५।३ हर्यश्वाय आपीन् संबर्हय— घुडसवार वीरके लिये मित्रोंको उत्साहित करो।

२९७।३ तुत्सुभ्यः उरुं लोकं अकृणोत्— तुत्सु लोगोंको विस्तृत प्रदेश युद्ध करके प्राप्त हुआ। उनको विस्तृत प्रदेश दिया।

३०१ वृत्रेषु उग्राः शूराः मंसन्ते— शत्रुका हमला होनेपर उग्रवीरोंका सन्मान होता है ।

३५४ विद्‌ध्यं पूषणं वीरं प्रकृणुध्वं— युद्धमें विजयी हृष्टपुष्ट वीरपुत्रको निर्माण करो । पुत्र ऐसा हो कि जो शूर हो और विजयी हो ।

३६३ पायुः दिव्यः सदा नः सिषक्तु- संरक्षणकर्ता दिव्य वीर सदा हमारी सुरक्षा करे ।

३८१ यः शुष्मी उग्रः तस्य रायः पर्येता कः नास्ति- जो वीर बलवान् और शूर होता है, उसके धनका अपहरण करनेवाला कोई नहीं होता ।

३८७ विधर्ता उग्रः तुरः राजा— धारण शक्तिवाला उग्र वीर त्वरासे कार्य करनेवाला राजा विजयी और स्तुतिके योग्य होता है ।

४१३ स्थिरधन्वने क्षिप्रेषवे सुधान्ने वेधसे अषाळ्हाय सहमानाय तिग्मायुधाय रुद्राय देवाय इमा गिरः भरत— स्थिर धनुवाले, शीघ्र बाण फेंकनेवाले, धारण शक्तिवाले शत्रुके आक्रमणको हटानेवाले बलवान तथा तीक्ष्ण आयुधवाले (रुद्र देव) वीरके लिये ये स्तोत्र हैं ।

४५३ रुद्रस्य सनीळाः मर्याः सु-अश्वाः व्यक्ताः नर — रुद्रके एक ही घरमें रहनेवाले मर्त्य वीर उत्तम घुडसवार और सबके परिचित नेता हैं ।

४५५ स्वपूर्भिः मिथः अभिवपत, वातस्वनसः श्येनाः अस्पृध्रन्- अपने शरीरोंके साथ मिलकर, वायुके प्रचंड वेगके समान शब्द करनेवाले और श्येन पक्षीके समान वेगवान् वीर स्पर्धामें शामील होते हैं ।

४५६ धीरः एतानि निण्या चिकेत- शूर वीर इन कार्यकलापोंको जानता है ।

४५७ सा विट् सुवीरा सनात् सहन्ती नृम्णं पुष्यन्ती अस्तु- वह प्रजा उत्तम वीर होकर, सदा शत्रुका पराभव करती हुई, मनुष्योंके उपयोगी होनेवाले बलको बढाती रहे ।

५११।१ एषां समृतिः सस्वः त्वेषी च- इन वीरोंकी मित्रता गुप्त स्थायी तथा तेजस्विता देनेवाली होती है ।

५११।१ अर्वाच्येन सहसा सहन्ते- सुरक्षित बलसे वीर शत्रुका पराभव करते हैं ।

५१२।३ युष्मत् भिया रेजमानाः- तुम वीरोंके भयसे शत्रु कांपते हैं ।

५१२।३ दक्षस्य महिना नः मृळत- अपने बलकी महिमासे हम सबको सुखी करो ।

५१८।३ अयज्वनां मासाः अवीराः आयन्- यज्ञ न करनेवालोंके दिन वीरतारहित अवस्थामें जांय ।

५३७।१ ऊर्ध्वां धृतिं कृणवत् धारयत्- उच्च धैर्य करता और धारण करता है ।

५४१ भूरिपाशा अनृतस्य सेतुः मर्त्याय रिपवे दुरत्येतुः- शत्रुको बाधनेके बहुत पाश धारण करनेवाले, असत्यके पार होनेके सेतु जैसे, मानवी शत्रुको पार करनेवाले ये वीर हैं ।

५५३।१ सूरचक्षसः अग्निजिह्वाः ऋतावृधः— सूर्यके समान देखनेवाले, अग्निके समान जिह्वावाले अर्थात् उत्तम वक्ता सत्यका संवर्धन करनेवाले वीर हों ।

५५४।१ अनाप्यं क्षत्रं राजानः आशत- अप्राप्य क्षात्रबल राजा प्राप्त करें ।

५५४।२ शरदः मासं अहः अक्तुं ऋचं यज्ञं विदधुः- वीर वर्ष, मास, दिन-रात, ज्ञान और कर्मका धारण करें । दीर्घायु और ज्ञानी बनें ।

५५६ ऋतावानः ऋतजाताः ऋतावृधः अनृतद्विषः घोरासः सुछर्दिष्टमे सुम्ने सूरयः नरः वयं स्याम— सत्यनिष्ठ असत्यद्वेषी घोर वीरोंके सुखमें हम रहेंगे ।

६६३।३ उग्रः मरुद्भिः शुभं ईयते-उग्र वीर मरुद्वीरोंके साथ सबका शुभ करता है ॥

८६४ शूरग्रामः सर्ववीरः सहावान् जेता तिग्मायुधः क्षिप्रधन्वा समत्स्वसाळ्हः पृतनासु शत्रून् साह्वान् धनानि सनिता— शूर, वीर, बलवान, विजयी, तीक्ष्ण शस्त्रवाला, शीघ्र धनुष्य चलानेवाला, युद्धोंमें असह्य, शत्रुओंका पराभव करनेवाला वीर हो ।

९१३ यः धीरः शक्रः परिभूः अदाभ्यः- जो शूर वीर बलवान शत्रुओंको जीतनेवाला और किसीसे न दब जानेवाला है वही उत्तम वीर है ।

इस तरह वीरोंका वर्णन वासिष्ठ मंत्रोंमें है । ये सब मंत्र मनन करने योग्य हैं ।

वीरके शस्त्र–वीरके शस्त्र कैसे होने चाहिये इस विषयमें क्या कहा है देखिये, (परा-शरः) दूरतक बाण फेंकनेमें समर्थ वीर हो, (वज्रं मिमिक्षत्) वज्र जैसे शस्त्रको तीक्ष्ण करके धारण करे, (आयुधेभिः भीमः) शस्त्रोंसे भयंकर वीर हो, (वज्र हस्त) हाथमें वज्र धारण करनेवाला वीर हो, (वज्रबाहु) वज्र जैसे बलवान बाहु हों, (दिद्युत् ऊती) संरक्षक शस्त्र तेजस्वी हों, (स्थिर धन्वा) शूरका धनुष्य स्थिर हो, न टूटनेवाला हो, (क्षिप्रेषुः) शीघ्र बाण छोड सकनेवाला वीर हो, (वेधाः) अचूक बाण मारनेवाला, शत्रुको वींधनेवाला, (तिग्मायुधः) तीक्ष्ण आयुधवाला, (भूरिपाशः) वीरके पास शत्रुको बाधनेके लिये बहुत पाश हों, (अग्नि जिह्वा) अग्नि ज्वालाके समान ज्वाला शत्रुपर छोडनेका साधन वीरके पास हो, (क्षिप्रधन्वा) धनुष्य शीघ्रतासे चलानेवाला वीर हो। इस तरह शस्त्र, अस्त्र वीरके पास हों और वह शस्त्रप्रयोग करनेमें प्रवीण हो।

उत्तम वीर बनो

केवल वीर बने इतनी ही इच्छा यहां दीखती नहीं है। यहा तो सु-वीर ' अर्थात् उत्तमसे उत्तम वीर होना चाहिये यह महत्त्व-पूर्ण आकांक्षा स्पष्ट दीखती है। ऊपर दिये वचनोंमें ' सुवीर ' पद अनेक वार आया है, जो प्रेरणा करता है कि उत्तम शूर वीर बनो। ये उत्तम वीर (सुजातासः) कुलीन हों, अर्थात् उनके आनुवंशिक संस्कार उत्तम हों। (भूरि अन्नं अत्ति) वीर अधिक अन्न खाये, क्योंकि यदि वह अधिक न खाय तो उसमें विशेष शक्ति नहीं बढेगी और वह युद्धके कर्म ठीक तरह कर नहीं सकेगा। वीरको ' दारु ' कहा है, (दारयति सः) जो शत्रुका विदारण करता है वह दारु है। (भीमः) भयंकर युद्ध करनेवाला, देखनेमें भयानक, (विश्वाः कृष्टीः च्यावयति) शत्रुके सब सैनिकोंको भगा देता है। यह है वीरताकी कृती। अदाता, अनुदार, कंजूस ही समाजका शत्रु है उसको समाजसे दूर करना चाहिये। (अ-दाशुषः गयस्य च्यावयिता) जो दान सार्वजनिक हितके कार्य करनेके लिये नहीं देता उसका घर हमारे समाजमें नहीं रहना चाहिये। समाजमें वेही लोग रहें कि जो सार्वजनिक हित करनेके लिये योग्य दान देते हैं।

वीर (युध्मः) युद्ध करनेके लिये उत्सुक रहे, सदा तैयार रहे, (अनर्वा) पीछे न हटनेवाला, (जनुषा सत्राषाट्) जन्म-स्वभावसे शत्रुका पराभव करनेवाला, (अ-षाळ्हः) कभी पराभूत न होनेवाला, (स्वोजा.-सु+ओजाः) अपने निज-बलसे ही जो बलवान हुआ है, (स्व कृत्) उत्तम रीतिसे युद्ध करनेवाला, (नर्यः) सब मानवोंका हित करनेवाला वीर होना चाहिये। (पौंस्यं) पौरुष, सामर्थ्य, (नृम्णं)- मनुष्योंके हित करनेका बल, (२५० विश्वेषु शूरः सेन्यः) सब मनुष्योंमें जो विशेष शूर हो वही सेनामें भरती करनेयोग्य है। यह महत्त्वकी बात है।

इस प्रकार शूरवीरोंके विषयमें वसिष्ठ दर्शनमें मननीय उपदेश है, वह सब मानवोंका हित करनेवाला है। इसलिये इसका मनन विशेष रीतिसे करना योग्य है।

शत्रुनाश

१९६।१ **यातवः नः न जुजुवु** – यातना देनेवाले शत्रु हमारे पास न आ जाय।

१९६।२ **वंदना वेद्याभिः नः न जुजुवुः**– वन्दन करके हमारे अन्दर नम्रभावसे रहनेवाले हमारे शत्रु हमारे पास न पहुंचे।

१९६।३ **स अर्यः विषुणस्य जन्तोः शर्धत्**- वह श्रेष्ठ वीर विषम भाव मनमें धारण करनेवाले दुष्ट मानवोंपर भी अपना प्रशासन करता है।

१५८ **अर्यः वक्चे निदे आराव्णे नः मा रन्धि—** तुम हमारे स्वामी होकर हमें कठोरभाषी, निंदक अदाताके अधीन न रख।

२९२।१ **अज्ञाताः अशिवासः दुराध्यः वृजनाः नः मा अवक्रमुः—** अज्ञात मार्गसे आकर अशुभ दुष्ट शत्रु हमपर आक्रमण न करें।

७७० **सश्चतः अदिशान् अतिपर्षत्—** हमारेपर आये दुःखोंको दूर कर।

' यातु ' वह है कि जो यातना या पीडा देता है। चोर लूट, घातपात करनेवाले लोग यातु कहलाते हैं क्योंकि वे समाजको यातना पहुंचाते हैं। (अज्ञाताः अशिवासः) अज्ञात मार्गसे अशुभ (दुराध्यः वृजनाः) दुष्ट दुर्जन आते हैं और अनेक प्रकारके कष्ट पहुंचाते हैं। ये सब समाजके शत्रु हैं उनको दूर करना चाहिये।

७।१ **विश्वाः अरातीः, अरूर्थ, तेजोभिः अपदह**- सब शत्रुओं और कठोरभाषियोंको दूर करो। जला दो।

७१ निः स्वरं अरातीः चातयस्व— शब्द न करते हुए दुष्ट दूर हो जांय ऐसा कर।

१३ अजुष्टात् रक्षसः अररुषः अघायोः धूर्तेः पाहि- अयोग्य, दुष्ट, पापी, धूर्त शत्रुसे अपना संरक्षण कर।

१३ पृतनायून् अभिष्यां— सैन्यसे हमला करनेवाले शत्रुओंका भी हम नाश करेंगे। शत्रुका पराभव करेंगे।

७०।१ सः वधस्नैः देह्यः अनमयत्— वह राजा शस्त्रोंसे हिंसक आसुरी कर्म करनेवालोंको विनम्र करता है।

७०।१ सहोभिः विशः निरुध्य बलिहृतः चक्रे— वह राजा अपने सामर्थ्योंसे कर न देनेवाली प्रजाका निरोधन करके उनको कर देनेवाली बनाता है।

८३ सः भरतस्य अग्निः पृतनासु पुरुं अभितस्थौ- वह भरतका सेनानी अग्रणी वीर युद्धोंमें पुरु नामक असुरके ऊपर आक्रमण करनेके लिये खडा हुआ था।

८८ स सुक्रतुः पणीनां दुरः वि- वह उत्तम कर्म करनेवाला वीर पणि राक्षसोंके कीलोंके द्वार तोडता है, और मार्ग खुला करता है।

९१।१ जरूथं हन्- कठोरभाषी दुष्टको दण्ड दे।

१११ शुक्रशोचिः अमर्त्यः शुचिः पावकः ईड्यः अग्निः रक्षांसि सेधति- तेजस्वी, अमर, दीप्तिमान, पवित्र, स्तुत्य, अग्रणी नेता राक्षसोंका नाश करता है।

११४ त्वं अंहसः रक्षः अजर रिषतः तपिष्ठैः दह- तू पापी शत्रुओंसे हमें बचाओ और जराहित होकर अपने तपनेवाली ज्वालाओंसे हिंसक शत्रुओंको जला दो।

१५०।१ शापं, सिन्धूनां अशस्तीः, शर्धन्तं शम्युं अकृणोत— शापको, नदियोंके महापूरके विनाशक जलप्रवाहोंको, शत्रुता करनेवाले शम्यु नामक शत्रुके ऊपर पहुंचने योग्य बना दिया।

१५२।१ युधा नृन् अगन्- युद्धमें शत्रुके वीरोंपर आक्रमण करें।

१५३ दुराध्यः अचेतसः— दुष्ट बुद्धिवाले तथा अविचारी जो हैं वे शत्रु हैं।

१५३ चायमानः कविः पलायमानः पशुः अशयत्- अपने स्थानसे उखाडा गया, वह ज्ञानी शत्रु भागनेपर भी हमारे (इन्द्र) वीरने उसे पशुके-समान गिरा दिया। मार दिया।

१५४ इन्द्रः मनुषे वध्रिवाचः सुतुकान् अमित्रान् अरंधयत्- इन्द्रने मनुष्योंके हित करनेके लिये व्यर्थ बडबड करनेवाले उत्तम संतानवाले शत्रुओंको मार डाला।

१५६।१ राजा श्रवस्या वैकर्णयोः जनान् नि अस्त- राजा यशकी इच्छासे सदुपदेश न सुननेवाले शत्रुके लोगोंका नाश करे। वि-कर्ण—सदुपदेश न सुननेवाला।

१५६।२ दस्मः सद्मन् बर्हिः निशिशाति— सुन्दर तरुण वीर घरमें बैठा बैठा जैसा दर्भोंको काटता है, वैसा शत्रुको वीर काटता जाय।

१५६।३ शूरः इन्द्रः एषां सर्गं अकरोत्— शूर इन्द्रने इन वीरोंकी उत्पत्ति ही इस शत्रुनाशके कार्यके लिये की है।

१५७।१ वज्रबाहुः श्रुतं वृद्धं द्रुह्युं क-वषं अप्सु निवृणक्— वज्रधारी वीर बहुश्रुत ज्ञानी, द्रोहकारी तथा कभी वशमें न आनेवाले शत्रुको जलप्रवाहोंमें डुबाकर मारे।

१५८।१ एषां विश्वा पुरः सप्त दृंहितानि सहसा सद्यः विदर्दः- इन शत्रुओंके सब नगरियोंके सातों सुदृढ प्राकारोंको अपने बलसे तत्काल तोड दो।

१५८।२ अनवस्य गयं तृत्सवे विभाक्- अरक्षणीय शत्रुके स्थान मित्रोंको दे दो।

१५८।३ मृध्रवाचं पुरुं जेष्म- असत्यभाषी नागरिक शत्रुपर हम विजय प्राप्त करेंगे।

१५९ गव्यवः द्रुह्यवः अनवः षष्टिः शता षट्सहस्रा षष्टिः च षट् वीरासः दुवोयु नि सुषुपुः— द्रोहकारी रक्षणके अयोग्य ऐसे गायें चुरानेवाले शत्रुओंके छियासठ हजार छियासठ वीरोंको मित्रोंका रक्षण करनेके लिये मारा गया।

१६० दुर्मित्रासः तृत्सवः प्रकलवित्- विशेष कलावान् होनेपर भी लोभी होनेके कारण शत्रु ही समझे गये, उनपर हमला किया, तब वे (विश्वा भोजना जहु)- सब अपने भोजनादि भोगोंको छोडकर (वेविषाणाः सृष्टाः नीचीः अधावंत)- हमारे वीरोंद्वारा अन्दर प्रविष्ट होनेपर अपने स्थानसे छुट गये और नीचे मुंह करके भागने लगे।

१६१।१ क्षां अभि अनिन्द्रं वीरस्य अर्धं शर्धन्तं परा नुनुदे— मातृभूमिके हितका विचार करके नास्तिक तथा वीरके घातक शत्रुको दूर भगा दो।

१६१।१ **मन्युम्यः मन्युं मिमाय—** क्रोधी शत्रुके क्रोधका नाश करो।

१६१।३ **पत्यमानः पथः वर्तनिं भेजे—** पराजित शत्रु भागनेवालोंके मार्गका सेवन करे। इतना शत्रुका पराभव करना चाहिये कि वह भाग जाय।

१६३।१ **ते शत्रवः शश्वन्तः ररधुः—** तुम्हारे शत्रु सदाके लिये पीसे जांय।

१६३।२ **शर्धतः भेदस्य रन्धि विन्द—** स्पर्धा करनेवाले तथा पक्षभेद निर्माण करनेवाले शत्रुका नाश कर।

१६३।३ **यः स्तुवतः मर्तान् एनः कृणोति, तिग्मं वज्रं निजहि—** जो सदाचारी लोगोंको भी पापका दोष लगाता है, उसपर तीक्ष्ण शस्त्र फेंको।

१६५।३ **मान्यमानं देवकं जघंथ**- घमंडी तथा तुच्छ देव पूजकका नाश कर। '**देव-क**' तुच्छ छोटा देव, हीन देवपूजक।

१६५।४ **बृहतः शंबरं अवभेत्—** बडे पहाडपरसे युद्ध करनेवाले शत्रुका नाश कर।

१६९ **युध्या-मधि सरितः अभीके नि अशिशात्**- सतत युद्धसे ही कष्ट देनेवाले शत्रुको नदीके जलमें विनष्ट करो। " युध्या-मधि " -जो युद्ध करके ही सदा कष्ट देता है।

१७२ **दासं शुष्ण कुयवं निरंधयः**- घातपाती, शोषणकर्ता, बुरे चावल देनेवाले शत्रुका नाश कर।

१७४।१-२ **नृमनः देववीतौ नृभिः भूरीणि हंसि—** प्रजाका (नृ-मनः) हित करनेमें जिसका मन तत्पर है, वह युद्धोंमें अपने वीरों द्वारा बहुत शत्रुओंका वध करता है।

१७४।३ **दस्युं चुमुरिं धुनिं नि अस्वापयः—** घातपाती, कष्टदायी और घबराहट करनेवाले शत्रुओंको स्थायी रीतिसे सुला दो। वे फिर कभी उठ न सकें।

१७४।४ **दभीतये भूरिणि हंसि—** भयभीतको निर्भय करनेके लिये बहुत शत्रुओंका नाश कर।

१७८।४ **तुर्वशं याद्वं नि शिशीहि**- त्वरासे वशमें करनेवाले तथा यातना देनेवाले शत्रुका नाश कर।

१८३।१ **शूशुवानः वृत्रं हन्ता**- सामर्थ्यसे बढनेवाला वीर शत्रुका नाश करता है।

१९७।१ **क्रत्वा ज्मन् परिभूः—** अपने पुरुषार्थसे भूमिके ऊपरके सब शत्रुओंका पराभव कर।

१९७।३ **स्वेन शवसा वृत्रं जघन्थ**- अपने निजबलसे शत्रुका वध कर।

१९७।४ **शत्रुः युधा ते अन्तं न विविदन्**- शत्रु युद्धसे तेरा ही नाश न कर सके, इतना अपना सामर्थ्य बढाओ।

१९८ **पूर्वे देवाः असुर्याय क्षत्राय ते सहांसि अनु-ममिरे**- पूर्वसमयके देव (अर्थात् अबके राक्षस) अपने क्षात्रबलकी घमण्डसे तुम्हारे बलोंको कम मानते थे। (पर वे फंस गये।)

२१३।२ **इन्द्रः वृत्राणि अप्रति जघन्वान्**- इन्द्र शत्रुओंको अप्रतिम रीतिसे नष्ट करता है।

२२५।४ **वनुषः मर्त्यस्य वधः जहि—** घातपात करनेवाले शत्रुके मनुष्यने जो वध करनेके लिये शस्त्रप्रयोग किया है, उसका नाश कर।

२२७।४ **सत्रा वृत्रा सुहना कृधि—** सदा शत्रु सहजहीसे नाश करने योग्य हो, (अर्थात् अपना बल उनसे बहुत बढाया जाय।)

२३१ **सर्वाः पुरः, समानः एकः पतिः जनीः इव, सु नि मामृजे**- शत्रुकी सब नगरियोंको, समान रीतिसे अकेला ही, एक पति अनेक स्त्रियोंको वश करनेके समान, उत्तम रीतिसे वश करता है।

२४१।३ **तूतुजिः अतूतुजिं अशिश्नत्**- दाता अदाताको पीछे रखता है।

२४२ **दुर्मित्रासः क्षितयः पवन्ते, एभिः अहभिः नः दशस्य—** दुष्ट लोग आक्रमण करते है, उनको इन दिनोंमें हमारे अधीन कर।

२५० **त्वं सुहन्तु वृत्राणि रन्धय**- तू तीक्ष्ण शस्त्र मारकर शत्रुका नाश कर।

२५९ **त्वं वर्म असि, पुरो योधः असि, त्वया युजा प्रतिब्रुवे**- तू हमारा कवच हो, तू संरक्षक है, तू अग्रगामी होकर युद्ध करनेवाला है, तेरे साथ रहकर हम शत्रुको योग्य उत्तर देंगे।

२७२ **शर्धतः समजासि**- स्पर्धा करनेवाले शत्रुको दूर कर।

२८० वृत्रहत्येषु चोदय- शत्रुका नाश करनेके लिये अपने वीरोंको उत्तेजित कर।

२८० तव प्रणीति सूरिभिः विश्वा दुरिता तरेम- तुम्हारी नीतिका अवलंबन करके ज्ञानियोंके साथ रहकर हम सब दोषोंको दूर करेंगे, सब शत्रुओंके पार जायगे।

२९० अमित्रान् परा नुदस्व- शत्रुओंको दूर कर।

३१९ द्विषां दिद्युत् अशेवा विष्वक् व्येतु- शत्रुओंके तेजस्वी शस्त्र हमपर परिणाम न करते हुए चारो ओर अस्तव्यस्त हों जाय।

३२३ अहिः नः रिषे मा धात्- शत्रु हामारा नाश न करे।

३२४ राये शर्धन्तः अर्यः प्रयन्तुः- धनकी स्पर्धा करनेवाले शत्रु दूर हों।

३५० रिरिक्षतः मन्युं प्र मिनाति—शत्रुके क्रोधको वीर दूर करता है।

४०१ देवताता नः मृधः मा कः— युद्धमें हमारे शत्रुओंको सहायता न कर।

४२३।४ शत्रोः नृम्णं मिथत्या विक्रुण्वन्— शत्रुके बलको हिंसा द्वारा विकृत करके नाश करते हैं।

५११।२ अर्यमा द्वेषोभिः परि वृणक्तु— अर्यमा द्वेषी शत्रुओंको घेरकर रखे।

५१४ विश्वानि दुर्गा नः तिरः पिपृतं— सब विपत्तियोंको हमसे दूर करो।

५१९।३ जनानां द्रुहः अनृता सचन्ते-- जनताके द्रोहियोंको असत्य मार्गमे पकडो।

५५३।१ परिभूतिभिः धीतिभिः विश्वानि विद्थानि येमुः— शत्रुका पराभव करनेके अनेक सामर्थ्योंसे युक्त सब वीर युद्धस्थानोंका नियमन करते है।

५७४ अर्यः तिरः-- शत्रुओंको दूर करो।

६१९ द्रुहः अजुष्टं तमः अप आवः— शत्रु भूत अंधकार दूर करता है।

६२५।१ देवी देवेभिः दळहा रुजत्—देवी उषा देवोंके साथ सुदृढ शत्रुओका नाश करती है।

६२५।२ सत्या सत्येभिः दळहा रुजत्— सत्यवीरा सत्यपालक वीरोंद्वारा सुदृढ शत्रुओंको दूर करती है।

६५९।१ यः पृतनासु दूढ्यः दीर्घप्रयज्यं अतिवनुष्यति तं वय जयेम-- जो युद्धोंमें पराजित होना कठिन है, जो उत्तम मानवको कष्ट देता है, उस शत्रुपर हम जय पायेंगे।

६६४।१ अन्य ऋभ्वयन्तं अजामिं आ आतिनरत्-- अन्य वीर शत्रुको दूर करता है।

६६४।२ अन्य. दभ्रेभिः भूयसः प्रवृणोति-- दूसरा वीर थोडे सैन्यसे बडे शत्रुको घेरता है।

६८५।४ शर्वा विषूचः पराचः, अमित्रान् हतं- शत्रुओंको दूर करो और उनका वध करो।

६८६।१ अन्यः प्रविक्ताः अप्रतीनि वृत्राणि हन्ति- दूसरा वीर बडे शत्रुका वध करता है।

७३१ अर्यः नितोशनासः— शत्रुका नाश करनेवाले वीर होते हैं।

७४९ चर्षणीसहा अस्मभ्यं अवसा आगतं-- सेनाका पराभव करनेवाले तुम सब वीर हमारे पास संरक्षणके साथ आओ।

७५४ दुःशंसं दुर्विद्वांसं आभोगं रक्षस्विनं हन्मना हतं— दुष्ट, अज्ञानी, कुटिल, शत्रुका नाश कर।

७८७ वृषशिप्रस्य दासस्य मायाः पृतनाज्येषु जघ्नतुः— शत्रुके कपटोंका नाश करो।

७८८ वर्चिन असुरस्य शतं सहस्रं वीरान् अप्रति साकं हथः— बलवान् शत्रुके सैंकडों और सहस्रा वीरोंको साथ साथ मारो।

८१८ अघशंस अघं सं अभि, तपुः ययस्तु ब्रह्मद्विषे, घोरचक्षसे किमीदिने अनवायं द्वेषः धत्त- पापद्वेषी, ज्ञान द्वेषी घोर शत्रुका वध कर।

८१९ दुष्कृत तमसि अन्त प्र विध्यत-- दुष्टोंको अन्धेरेमे वींधो।

८२० ववृधानं रक्ष निजूर्वथ-- बढनेवाले राक्षसके मारो।

८२१ अग्नितप्तेभिः अश्महन्मेभि तपुर्वधेभि अजरेभिः अत्रिणः पर्शाने नि विध्यतं, विस्वरं यन्तु-- शस्त्रोंसे राक्षसोंको मारो वे चुपचाप भागें।

८२३ भंगुरावत. द्रुहः रक्षस. हतं, दुष्कृते सुगं मा भूत्. यः नः द्रुहा अभिदासति— राक्षसों, दुराचारियोंको मारो।

८२४ असतः वक्ता असन् अस्तु— असत्यभाषी नष्ट होवे।

८२६ स्तेयकृत् स्तेनः रिपुः दभ्रं एतु, स तन्वा तना च निहीयतां— चोर नष्ट हो, वह समूळ नष्ट हो।

८२७ स तन्वा तना च परः अस्तु, अस्य यशः परिशुष्मतु, यः दिवा नक्तं दिप्सति— जो दिनरात कष्ट देता है वह विनष्ट होवे, वह सूख जाय, दूर हो जाय।

८७७ रक्षः हन्ति, अरातीः परिबाधते— राक्षस मारते है, शत्रु बाधा करते है।

८४१ प्रतिचक्ष्व, जागृतं, रक्षोभ्यः वधं अस्यतं, यातुमद्भ्यः अशनिं अस्यतं— देखो, जागो, राक्षसोंपर शस्त्र फेंको, घातपात करनेवालोंपर अस्त्र चलाओ।

शत्रुके लक्षण

वसिष्ठ मंत्रोंमें शत्रुके लक्षण दीखते हैं वे ये हैं- (अ-राति) दान न देनेवाला, कंजूस, कृपण, सार्वजनिक हित करनेके कार्योंमें दान न देनेवाला, (जरूथ) कठोर भाषण करनेवाला, व्यर्थ बहुत बडबडनेवाला, अपने भाषणसे दूसरोंके मनको कष्ट देनेवाला, (अ-जुष्ट) पास जाने अयोग्य, साथमें रहने अयोग्य, प्रीतिसे सेवा करने अयोग्य, (रक्षः) रक्षक करके रहकर घातपात करनेवाला, (अघायु) पापी जीवन व्यतीत करनेवाला, (अररुष) दुष्ट दुर्जन, (धूर्त) धूर्त, कपटी, कुटिल, (पणि) दुष्ट रीतिसे व्यापार, व्यवहार करनेवाला, व्यापार करनेके मिषसे चोरी करनेवाला, (अंहः) पापी, (रिषत्) हिंसक, (अशस्त) अप्रशंसनीय, निंद्य, (शर्धन्) हिंसक, घातपात करनेवाला, (दुराध्य) दुष्ट बुद्धिवाला, घातपातकी ही आयोजना करनेवाला, (पत्यमान) गिरनेवाला, पतित, (पशु) पशुके समान बर्ताव करनेवाला, (वध्रिवाच्) व्यर्थ बहुत बोलनेवाला, निरर्थक भाषण करनेवाला, (अ-मित्र) जो मित्रता नहीं करता, शत्रुत्व करता है। (वैं-कर्णः) सदुपदेश न सुननेवाला, सुननेपर भी उसके अनुसार आचरण न करनेवाला, (द्रुह्) द्रोही, घातपात करनेवाला, द्रोहकारी (क-वष) संयम न करनेवाला, (अनव, अन्-अव) रक्षण करने अयोग्य, जिसका नाश ही होना चाहिये, (मृध्र-वाक्) असत्यभाषी, (दुर्मित्र) मित्र करके रहकर दुष्टता, शत्रुता करनेवाला, (अनिन्द्र) ईश्वर उपासना न करनेवाला, नास्तिक, (मन्यु-म्य) क्रोधी, (भेद) भेद उत्पन्न करनेवाला, फूट उत्पन्न करके बढानेवाला, आपसका विद्वेष बढानेवाला, (एनः) पाप करनेवाला, पाप, पापी, (मान्यमान) घमंडी, गर्विष्ठ, (देवक) हीन देवताका पूजक, क्षुद्र देवताका उपासक, तामस देवताका भक्त, (युध्या-मधि) युद्ध बढानेका इच्छुक, कलह बढानेवाला, (दास) घातपात करनेवाला, विनाश करनेवाला, (शुष्म) शोषण करनेवाला, लुटेरा, (कु-यव) चावलोंको सडाकर बेचनेवाला, दूषित धान्यका व्यापार करनेवाला, (दस्यु) विनाशकर्ता, घातपात करनेवाला, (चुमुरि) कष्ट देनेवाला, घबराहट उत्पन्न करनेवाला, (धुनि) योंही प्रक्षोभ मचानेवाला, (यातु) यातना बढानेवाला, (वृत्र) घेरनेवाला शत्रु, (पूर्व देवः) पहिले देव करके बताकर पीछेसे शत्रुता करनेवाला, (वनुष्) घातपात करनेवाला, (अ-तु तुजि) दान न देनेवाला, (द्विष्) द्वेष करनेवाला, व्यर्थ द्वेष करनेवाला (अ-हिः) कम न होनेवाला, घातपातोंको बढानेवाला, (अरिः) आक्रमणकारी शत्रु, (मृधः) हिंसक, (अनृत) असत्य मार्गसे जानेवाला, कुटिल, (तमः) अज्ञानान्धकार बढानेवाला, (दीर्घप्रयुज्य) दीर्घ द्वेष करनेवाला, (दुःशंस) जिसकी चारों ओर निंदा होती है, (दुर्विद्वान्) विद्वान होनेपर भी दुष्ट प्रवृत्तीवाला, (आभोग) कुटिल, सर्पके समान कुटिल गतिवाला, (मायाः) कपट, जाल फैलानेवाला, (दुष्कृत) बुरा चालचलन करनेवाला, (अत्रिन्) खानेवाला भोगी, (भंगुरावान्) तोड मरोडनेवाला, (असत) असन्मार्गसे चलनेवाला, (स्तेयकृत्) चोरी करनेवाला, (स्तेनः) चोर, (रिपुः) शत्रु (परः) अन्य होकर रहनेवाला, (यातुमान्) यातना देनेवाला, कष्ट देनेवाला, जो होता है वह शत्रु है।

यहां शत्रुके करीब करीब साठ लक्षण दिये हैं। इन लक्षणोंसे मनुष्य अपने शत्रुओंको पहचान सकते है। शत्रुओंके इतने लक्षण देकर बताया है कि यदि शत्रुओंसे अपने आपको बचाना है, तो कितने लक्षणवालोंको दूर करना चाहिये। मनुष्य मात्र सुख चाहता है। इसलिये उसको शत्रुओंको दूर करना ही चाहिये।

जिस तरह रोगबीजोंको शरीरमें रखनेसे शरीर स्वास्थ्यका

आनंद नहीं मिल सकता, उसी तरह राष्ट्रमें इन लक्षणोंवाले शत्रुओंको रखनेसे राष्ट्रको भी सुख, समाधान तथा आनंद नहीं प्राप्त हो सकता। जितने शत्रु समाजमें रहेंगे, उतने उपद्रव समाजमें बढेंगे और सामाजिक शान्ति सुदूर जाती रहेगी। इसलिये समाजको शान्ति, सुख स्थायी रूपसे देनेके लिये समाजसे ये उपद्रवकारी दुष्ट लोग दूर हटाने चाहिये। इसलिये ऋषिलोग इन दुष्टोंके इतने लक्षण देते हैं। इन लक्षणोंसे मनुष्य इन दुष्टोंको पहचाने और इनसे अपने आपको बचावें और शान्तिका आनंद प्राप्त करें।

संरक्षक सैन्य

९ अनीकं मर्ताः नरः पुरुत्रा विभेजिरे— अपनी सेनाको मनुष्योंके नेता लोग अनेक स्थानोंपर विभक्त करके रखते हैं। देशकी सुरक्षाके लिये अनेक स्थानोंपर अपने सैन्यको रखने है। सैन्यको अनेक स्थानोंमें रखना चाहिये।

१०।२ शूराः नरः अदेवी माया अभिसन्तु— शूर लोग आसुरी, कपट जालोंको दूर करे, उनमें न फंसे। सेनासे आसुरी कपटियोंको दूर करें।

८४।१ विश्वेभिः अनीकैः सुमना भव— अपने सब सैनिकोंके साथ उत्तम मनसे व्यवहार करनेवाला बन।

२५० विश्वेषु जनेषु शूरः सेन्यः— सब जनोंमें जो शूर होगा वही सेनाके लिये योग्य है।

३२५ महासेनासः अमेभिः शत्रुं तपन्ति- बडी सेना अपने साथ रहनेवाले अपने बलोंसे शत्रुको तपाते हैं।

३९५ पुरु अनीकः— बहु सेना रखनेवाला वीर अच्छा होता है।

४२३।१ पूर्वीः शासा अभिसन्ति- शत्रुके बडे सैन्यका पराभव अपने उत्तम शस्त्रसे होता है।

१५० विश्वेषु जनेषु शूरः सेन्यः— सब मनुष्योंमें जो विशेष शूर होता है वह सेनामें भरती करने योग्य है। भीरु मनुष्यका सेनामें उपयोग नहीं हो सकता। **(९ अनीकं पुरुत्रा विभेजिरे)** अपने सैन्यको राष्ट्र रक्षणार्थ राष्ट्रमें अनेक स्थानोंपर रखते हैं। जहां जहां दुष्टोंका प्राबल्य होनेकी संभावना रहती है वहां पहिलेसे ही सेना रखी जानेसे वे गुण्ड दब जाते हैं और समाजमें उपद्रव नहीं करते। यह सावधानता राज्यशासकोंको पहिले ही रखनी चाहिये।

राक्षसी कपट जालोंको दूर करना और प्रजाको शान्ति सुखका अनुभव देना यही तो राज्यशासनका कर्तव्य है। इसलिये गुण्डोंके शमन करनेके लिये राष्ट्रमें अनेक स्थानोंमें सेनाकी छोटी मोटी टुकडियां रखना चाहिये। (शासा अभिसन्ति) शस्त्रसे थोडी सेना भी बडे शत्रुका सामना कर सकती है। इसलिये शत्रुके शस्त्रोंसे अपने शस्त्र अधिक तीक्ष्ण रखने चाहिये।

वसिष्ठ ऋषि राज्यशासनका कैसा उपदेश देते हैं यह देखिये।

दक्षको संरक्षक बनाओ।

१ यः दक्षाय्यः नित्यः दमे आस, तं सुप्रतिचक्षं अस्ते अवसे नि कृण्वन्— जो नित्य दक्ष रहकर अपने घरमें रहता है, उस उत्तम दर्शनीय वीरको घरके संरक्षणके लिये नियुक्त करते हैं। जो दक्षतासे अपने कार्य करता है, उसको रक्षणके कार्यमें नियुक्त करना योग्य है।

१५ समेद्धारं वनुष्यतः उरुष्यात् पापात् निपाति-- जगानेवाले वीरका हिंसकोंसे और बडे पापसे संरक्षण हो।

५५।१ वनुष्यतः अवद्यात् नि पाहि— हिंसकों और पापियोंसे संरक्षण करो।

१००।३ अभिशस्ति-पावा भव— शत्रुओंसे अपनी सुरक्षा करनेवाला बन जा।

१०९ यूय नः सदा स्वस्तिभि पात— तुम सदा हमारा संरक्षण कल्याण करनेवाले साधनोंसे करो।

११४ सः अग्निः नः आमात्यं वेदः विश्वतः रक्षतु उत अस्मान् अंहसः पातु:— वह नेता हमारे साथ रहनेवाले धनको सुरक्षित रखे और हमें पापसे बचावे।

१३६।२ तान् अंहसः पर्तृभिः पिपृहि- उनको पापसे बचानेवाले साधनोंसे बचाओ।

१३६।३ शतं पूर्भिः पिपृहि— सौ नागरिक कीलोंसे उनको सुरक्षित कर। कीलोंमें उनके संरक्षणके सब साधन रखो और उनसे संरक्षण करो।

१६४।२ यमुना तृत्सवः आवन्— यमनियम पालन करनेवाले तथा संकटोंसे पार करनेवाले वीर संरक्षण करते हैं।

१७० अ-जरं क्षत्र दुणाशं-- क्षात्रबल क्षीण न होनेवाला और अविनाशी हो।

१७३ धृषता विश्वाभि ऊतीभिः प्राव:-- शत्रुके उखाडनेके बलसे सब प्रकारके संरक्षके साधनोंसे अपने लोगोंका संरक्षण करो।

१७७।३ अवृकेभिः वरूथैः त्रायस्व-- क्रूरतारहित संरक्षणोंसे सबका संरक्षण कर।

१८०।४ नृणां सखा शूरः अविता च भूः-- मनुष्योंका मित्र शूर और उनका संरक्षण करनेवाला हो।

१८१।३ तन्वा ऊती वावृधस्व-- अपने शरीरके द्वारा संरक्षणकी शक्ति बढाओ।

१८१।४ महः एनसः त्राता-- बडे पापसे बचानेवाला वीर है।

१८१।३ युवा नृषदनं अवोभिः जग्मिः-- तरुण वीर-मनुष्य रहनेके स्थानमें अपने सब संरक्षण करनेके साधनोंके साथ जाता है।

१८३।२ वीरः जरितारं ऊती प्रावीत्-- वीर वीर काव्योंके गान करनेवालोंका संरक्षणके साधनोंसे संरक्षण करता है।

१८९।४ नृपीतौ वरूथे स्याम-- मानवोंकी सुरक्षा करनेके कार्यमें तथा उनकी सुरक्षाके कार्यमें हम कार्य करनेवाले होकर रहेंगे।

१९१।३ भूरेः सौभगस्य शतं ऊतिः अवः-सभी धनोंकी सुरक्षा सैकडों साधनोंसे करनी चाहिये।

१९३।२ त्वावतः अभिक्षत्तुः वरूता- तेरे संरक्षणमें रहनेवाला वीर चारों ओर हिंसा करनेवालोंका निवारण करता है।

२०० ते अवसा सभीके अर्यः अभीतिं वनुषां शवांसि वन्वन्तु- अपने बलसे युद्धमें आर्यदलके वीर आक-मणकारी हिंसकोंके बलोंका नाश करें।

२१७ अविता वृधे अस - हमारा रक्षण और संवर्धन करनेवाला हो।

२२५।१-२ सुदासे शतं ऊतयः सहस्रं शंसाः सन्तु- उत्तम दाताके लिये सैकडो संरक्षण प्राप्त हो और सहस्रों प्रशंसाएं प्राप्त हों।

२३२।१ यस्य मिथः तुरः ऊतयः- जिसके परस्पर मिले त्वरासे सिद्ध होनेवाले रक्षाके साधन है।

२३३।१ वृषभं कृष्टीनां नृन् ऊतये गृणाति-बलवान्-को मानवोंके नेताओंको सुरक्षित रखनेके लिये स्वीकारता है।

२३५।१ त्वं दृळहा-- तू सुदृढ शत्रुके कीलोंको तोडता है।

२३७।१ दाता मघवा नः सहूती, नः ऊती वाजं नियमते-- दाता धनपति हमारे कहनेपर, हमारी सुरक्षा कर-नेके लिये हमें बल देवे।

२४० हे शवसिन् उग्र! हस्ते वज्रं आदधिषे, घोरः सन् क्रत्वा अषाळ्हः जनिष्ठाः-- हे बलवान् वीर तुम अपने हाथमें वज्र धारण करता है, तब भयानक वीर बनता है और अपने युद्ध सामर्थ्यसे शत्रुके लिये असह्य होता है।

२७२ अवसे पक्तीः पचत, कृणुध्वं इत्-- संरक्षण करनेवालेके लिये, देनेके लिये अन्न पकाओ, उसके लिये आवश्यक कर्म करो।

२७२ मयः पृणन् इत् पृणते-- वह संरक्षक सुख देता है और हमें पूर्ण करता है।

२७६ यस्य अविता त्वं भुवः स मर्तः वाजयन् वाजं गमत्-- जिसका संरक्षण तू करता है वह मनुष्य अन्न धन प्राप्त करता है।

२७६ अस्माकं रथानां नृणां च बोधि-- हमारे रथों और वीरोंको जानो और उनका संरक्षण करो।

२९२।१ वयं प्रवतः शश्वती अपः अतितराम-- हम सब अपनी सुरक्षा करनेमें समर्थ होकर सदा कर्मोंको निर्वि-घ्नतया कर सकें इतना सामर्थ्य प्राप्त करें।

२९६।३ न रिषाथ-- निर्बल न बनो।

३१८ विश्वासु विक्षु आविष्ठः-- सब प्रजाओंमें संरक्षण कर।

३५४।३ धियः अवितारं भगं प्र कृणुध्वं-- बुद्धिका संरक्षण करनेवाले वीरको भाग्यवान करो।

३६०।१ प्रवतः सनिता असि-- संरक्षण करनेवाला धन देता है।

३६०।३ युज्याभिः ऊती वयम्-- योग्य संरक्षणोंसे हम सुरक्षित होंगे।

३६६ विश्वेभिः पायुभिः सूरीन् निपातु— सब संरक्षक साधनोंसे ज्ञानियोंकी सुरक्षा हो।

३६८ वरूत्री एकधेनुभिः निपातु— वाणी गौओंसे हमारा संरक्षण करे।

३७० आहिं वृकं रक्षांसि जंभयन्तः- दुष्ट क्रूर राक्षसोंका नाश करो।

३७१ विप्राः अमृता ऋतज्ञाः वाजे वाजे धनेषु नः अवत— ज्ञानी अमर तथा सत्यनिष्ठ प्रत्येक युद्धमें धनके लिये हमारी सुरक्षा करें।

३७५ ते ऊमाः यज्ञियासः— वे संरक्षक वीर पूजनीय होते हैं।

३८१।१ यं मर्त्यं अवाथ, स उग्रः शुष्मी- जिसका संरक्षण होता है वह वीर बलवान् होता है।

३८३ मयोभुवः अर्वन्तः निपान्तु:— सुखदायी गतिशील वीर सबका संरक्षण करें।

४१४।३ अवती. अवन् (रुद्र) —जो अपना संरक्षण करता है उसका संरक्षण वह (रुद्र) करता है।

४१४।४ दुर उपचर- द्वारोंका संरक्षण करो।

४२४।३ विश्वे सजोषाः नः अवसे भूत— सब उत्साही वीर हमारे संरक्षणके लिये तैयार रहें।

४२५ ताः देवीः आप. इह मां अवन्तु— वे दिव्य जल हमारी सुरक्षा करें।

४३४ भुवनस्य गोपाः अस्माकं संतु- भुवनके रक्षक हमारे रक्षक हो।

४३६ अदितयः स्याम। देवत्रा पुः मर्त्यत्रा— हम अदीन बनें। देवोंकी रक्षक शक्ति मर्त्योंमें आजाय।

४३७ तोकाय तनयाय गोपाः— बालबच्चोंके रक्षक बनो।

४४३ हे वास्तोष्पते! नः प्रतरणः भव— हे भूपते! हमारा रक्षक हो।

४४४।२ क्षेमे उत योगे नः वरं पाहि— संरक्षण और धन प्राप्त करनेके समय हमारे पासके श्रेष्ठका संरक्षण करो।

५१७ ऋधग्यतः अनिमिषं रक्षमाणाः- सत्यमार्गसे जानेवाले सतत अपना संरक्षण करते हैं।

५२५ नः शर्साथां, सुजनिमासः वरुणस्य वायोः नृणां प्रियतमस्य मित्रस्य हेळे मा भूम- हमारा संरक्षण करो, हम सब कुलीन लोग वरुण, वायु, मानव, प्रियतम मित्रके क्रोधमें न हों।

५४८ यामन् प्र आवी. अस्तु— आक्रमण सरक्षक हो।

५६३।४ दूतः अजीगः- दूत जागता और जगाता है।

५६७।३ वाजे विश्वाः पुरंधी आविष्टं— बल बढानेके लिये सब संरक्षक बुद्धिको सुरक्षित रखो।

६६६ दैव्येन अवसा अर्वाक् आगतं— दिव्य संरक्षणसे पास आओ।

६८१।४ स्पार्हाभिः ऊतिभिः नः प्रतिरेत— स्पृहणीय संरक्षणोंसे हम दुःखसे पार हो जाय।

६८४।३ अभीके यामन् नः उरुष्यतां- युद्धमें शत्रु पर हमला चढानेके समय हमारा रक्षण हो।

७७५ धियः अविष्टं, पुरंधी जिगृतं, अर्यः अरातीः जजस्तं— बुद्धिका संरक्षण करो, विशाल बुद्धिको जाग्रत करो, शत्रुका नाश करो।

रक्षणका कार्य

संरक्षणके कार्यके लिये (अवसे दक्षाय्यः नि ऋण्वन्) संरक्षण करनेके कार्यके लिये अत्यंत दक्षको नियुक्त करना योग्य है। जो अपने कार्यमें दक्ष होगा वही संरक्षण अच्छी तरह कर सकेगा। जो दक्ष नहीं वह शिथिल रहेगा और अपना कार्य ठीक तरह कर नहीं सकेगा। (पापात् निपाति) पापसे मनुष्योंका संरक्षण होना चाहिये। संरक्षकोंका कर्तव्य है कि वे लोगोंको पापोंसे बचावें। असन्मार्गपर जाने न दें। (वनुष्यतः नि पाहि) हिंसकोंसे बचावें। संरक्षकोंका क्या कर्तव्य है वह यहां दीख रहा है। हिंसक, दुष्ट शत्रु हमला करने लगे, तो उनसे लोगोंका-नागरिकोंका संरक्षण करना चाहिये। (नः वेदः रक्ष) हमारे धनका संरक्षण करे। हमारे पास जो धन है, उसका संरक्षण संरक्षकों द्वारा होना चाहिये।

(स्वस्तिभिः पातं) कल्याण करनेवाले साधनोंसे संरक्षण करना योग्य है। नहीं तो ऐसा न हो कि संरक्षण तो हो, परंतु असुरक्षित अवस्थासे भी अधिक दुःखदायक स्थिति प्राप्त हो

जाय । (पूर्भिः पिपृहि) कीलोंसे नगरों और राष्ट्रका संरक्षण कर । कीलोंमें संरक्षणके सब उत्तमोत्तम साधन रखे जाय और उनसे संरक्षण किया जाय ।

(अजरं क्षत्र दुनाशं) विशाल क्षात्रबल विनष्ट नहीं होता, वही सरक्षण करता है । इसलिये अपने लोगोंका क्षात्रबल क्षीण न हो इसके लिये यत्न करना चाहिये । राष्ट्रमें क्षात्रबल बढाना चाहिये । (ऊतिभिः प्रावः) संरक्षणके उत्तम साधनोंसे हमें सुरक्षित कर । रक्षणके सब साधन अपने पास तैयार रहने चाहिये । इस विषयके यत्नमें त्रुटी नहीं होनी चाहिये ।(वरूथैः त्रायस्व) संरक्षक कवचोंसे बचाव करो । कवच जैसा संरक्षण करता है वैसी संरक्षणकी योजना करो और अपना बचाव करो। (शूरः अविता) जो शूर होता है वही उत्तम संरक्षक होता है। इसलिये वीरोंको अपने पास संरक्षक करके रखो । (ऊती वावृधस्व) संरक्षणके साधन बढाओ । जिनसे संरक्षण होता है वैसे सब साधन अपने पास रखो ।

(अभिक्षत्तुः वरूता) हिंसक दुष्ट शत्रुओंका निवारण करना चाहिये । (अर्यः वनुषा शवांसि वन्वन्तु) आर्यदलके वीर हिंसक बलोंका नाश करें और अपना संरक्षण करे । (अविता वृधे असः) रक्षक वीर वर्धन करनेवाला होता है । (शतं ऊतयः सन्तु) सैंकडों संरक्षक साधन अपने पास रखो। रक्षणके साधनोंमें न्यूनता न हो । (मिथ तुरः ऊतय) जो लोग आपसमें संघटित होकर रहते हैं, उनके लिये संरक्षणके साधन शीघ्र ही उपस्थित रहते है। आपसकी संघटना और रक्षाके साधन साथ साथ रहने चाहिये ।

(कृष्टीना वृषभं ऊतये) मानवोंमें जो बलवान होते है उनको संरक्षणके कार्यके लिये नियुक्त करना योग्य है । बैल जैसे बलवान पुरुष संरक्षणके कार्यके लिये लगाना योग्य है । (घोर सन् अषाळ्ह-) जो भयंकर वीर होता है वह शत्रुका पराभव करता है । इसलिये मनुष्य बल वीर्य शौर्यसे विशेष उग्र बने और अपना रक्षण करें ।

(विश्वासु विक्षु अविष्ठः) सब प्रजाजनोंतक संरक्षण पहुंचना चाहिये । राष्ट्रमें कोई मनुष्य असुरक्षित नहीं रहना चाहिये । हम सब सुरक्षित हैं ऐसा सब नागरिकोंको प्रतीत होना चाहिये। (धिय अवितारं भगं कृणुध्वं) बुद्धिका संरक्षण करनेवालेके लिये पर्याप्त धन दो। क्योंकि बुद्धिका संरक्षण हुआ तो ऐश्वर्य भी प्राप्त होता है। इसलिये धनसे बुद्धिके संरक्षणका महत्त्व विशेष है ।

(विश्वेभिः पायुभिः सूरीन् पातु) सब संरक्षक साधनोंसे ज्ञानियोंका संरक्षण होना चाहिये । राष्ट्रका उत्थान ज्ञानियोंसे होता है । इसलिये विपत्तियोंके समय ज्ञानी विज्ञानीयोंका संरक्षण करना चाहिये। वे सुरक्षित रहे तो राष्ट्रका उद्धार निःसंदेह होगा । (विप्राः अमृताः अवतं) ज्ञानी न मरकर सब अन्योंका संरक्षण करे । ज्ञानियोंका प्रथम संरक्षण हो और वे अनेक युक्तियोंसे राष्ट्रका संरक्षण करें ।

(ऊमाः यजित्रास) संरक्षक वीर पूजनीय होते हैं, क्योंकि वे ही सबको सुरक्षा देकर बचाते है । इसलिये बचानेवाले माननीय होने ही चाहिये । (अर्वन्तः निपान्तु) प्रगतिसंपन्न वीर सबका संरक्षण करें । रक्षकोंमें गति चाहिये । शत्रुसे इनकी गति अधिक चाहिये जिससे वे शत्रुको पकड सकेंगे । (दुरः उपचर) द्वारोंका संरक्षण कर । घरके द्वार, नगरके द्वार, राष्ट्रके द्वार सुरक्षित रखने चाहिये। रक्षकोंको वहां रखना चाहिये। (सजोषाः अवसे भूत) सब उत्साही वीर रक्षणके काममें लगे ।

(भुवनस्य गोपा सन्तु) राष्ट्रके संरक्षण करनेवाले अच्छे रक्षक हों । (वास्तोष्पते प्रतरण. भव) हे रक्षक ! हे भूपते ! उत्तम संरक्षण करनेवाला हो । (नः वरं पाहि) हमारे अंदर जो श्रेष्ठ होगा उसका संरक्षण कर । (अनिमिषं रक्षमाना) आंख बंद न करते हुए अपना संरक्षण करते रहो। आलस्य छोडकर अपना रक्षण करो । (यामन् प्रावी. अस्तु) शत्रुपर आक्रमण करना हो तो वह भी अपनी सुरक्षा करनेवाला होना चाहिये । नहीं तो इधर शत्रुपर आक्रमण करेंगे और उधर घरमें लूटे जायगे । (दूत. अजीगः) रक्षक, सेवक जागता रहे । उसको तो सदा जागना ही चाहिये । वह सोया तो सुरक्षा कौन करेगा ?

(विश्वाः पुरंधी आविष्ठ) सब विशाल नगररक्षक बुद्धियोंको सुरक्षित रखो । जिससे अपना संरक्षण किया जा सकता है उन बुद्धियोंको सुरक्षित रखो । बुद्धिको विनष्ट होने न दो ।

परीक्षा विभाग

आवश्यक सूचनायें

१- आगामी परीक्षायें ५-६ एप्रिल (शनि-रवि) १९५२ को होंगी।

२- आवेदन पत्र भरकर भेजनेकी अन्तिम तिथि- २४ फरवरी १९५२ है।

३- केन्द्र व्यवस्थापकोंको चाहिये कि वे आवश्यक आवेदन पत्रादि सामग्री केन्द्रीय कार्यालय पारडीसे यथा समय मंगवा लें।

४- जिन केन्द्रोंसे फरवरीकी परीक्षाओंमें परीक्षार्थी सम्मिलित नहीं हो सके हैं उन्हे एप्रिलकी परीक्षाओंमें सम्मिलित होनेकी विशेष सुविधा इस बार दी गई है। क्योंकि इस बार चुनाओंकी व्यस्तताके कारण अनेक केन्द्रोंको फरवरीकी परीक्षाओंमें सम्मिलित होना असम्भव रहा है। अत. इस नवीन सुविधासे लाभ उठाकर एप्रिलकी परीक्षाओंमे किसी भी केन्द्रसे परीक्षार्थी सम्मिलित हो सकते हैं। विशेष कर **हैद्राबाद राज्य, मद्रास, उत्तर प्रदेश** और **आसाम** के लिये ५-६ एप्रिलका समय भी पुन. दिया गया है। उपर्युक्त प्रान्तोंके केन्द्र व्यवस्थापक महानुभाव परीक्षार्थियोंको यह सूचना दे सकते हैं तथा ५-६ एप्रिलकी परीक्षाओंके लिये आवेदन पत्र भरवाकर भेज सकते हैं।

५- **१-२ फरवरी सन् १९५२ ई की संस्कृत परीक्षाओंका परीक्षाफल ता. २४ मार्च सन् ५२ ई. को प्रकाशित होगा।** परीक्षार्थी अपना परीक्षाफल स्थानाय केन्द्रोंमें २४ मार्चको प्रातः ८ बजे विदित कर सकते हैं।
